पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत
भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत

आई एस एस एन : 0972-169X
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल एस डब्ल्यू 1/4082/2007

विज्ञान प्रसार

ड्रीम 2047

फरवरी/मार्च 2007 खण्ड 9 अंक 5-6 मूल्य रुपए: 5.00

हमारा अंतरिक्षयान पृथ्वी

- पोलियो: पीछे हटता हुआ लक्ष्य - संपादकीय
- हेनरी प्वांकारे
- मेसॉन सिद्धांत के प्रवर्तक
- कोरोनरी बाइपास सर्जरी
- भूकंप सहने के लिए तन्यता
- आकाश दर्शन
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी: अभिनव उपलब्धियां

... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ...

पोलियो : पीछे हटता हुआ लक्ष्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ), रोटरी इंटरनेशनल, अमेरिका के सेंटरस फॉर डिजीज कंट्रोल एंड प्रीवेंशन (सीडीसी) और यूनीसेफ ने मिलकर सन् 1988 में जीपीई यानी 'ग्लोबल पोलियो इरेडिकेशन इनीशिएटिव' के नाम से पोलियो के उन्मूलन का अंतरराष्ट्रीय अभियान शुरू किया था। इसके फलस्वरूप पोलियो के मामलों में 99 प्रतिशत की कमी हो गई। जब 19 साल पहले 1988 में यह कार्यक्रम शुरू किया गया था तो 125 देशों में साढ़े तीन लाख से अधिक पोलियो के रोगी होने का अनुमान लगाया गया था। 2005 में दर्ज कराए गए रोगियों की संख्या घट कर केवल 1,951 रह गई थी। सन् 2000 तक विश्व को पोलियो-मुक्त रखने का लक्ष्य रखा गया था जिसे बाद में 2005 तक बढ़ाया गया। सन् 2006 में दुनिया में केवल चार देश बचे थे, जहां अपंग बनाने वाला यह रोग स्थानिक रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए है : पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नाइजीरिया *और* भारत।

पोलियो रोग का पूरा नाम है 'पोलियो माइलाइटिस' जो ग्रीक भाषा का शब्द है। इसमें पोलियोस (polios) का मतलब है भूरा या धुंधला और माइलोस (myelos) के माने हैं 'मज्जा'। इसके साथ पीछे प्रत्यय आता है 'आइटिस' जिसका अर्थ है शोथ या सूजन। पोलियोमाइलाइटिस नाम को लोगों ने छोटा करके 'पोलियो' बोलना शुरू कर दिया। मुख्य रूप से यह बीमारी पांच साल से कम उम्र के बच्चों को सताती है। पोलियो बड़ा उग्र संक्रामक रोग है जो एक विषाणु यानि वाइरस के कारण पैदा होता है। यह शरीर में मुंह और नाक से प्रवेश करता है और आंतों में पहुंचकर अपनी संख्या बढ़ाता है। इसके बाद यह विषाणु तंत्रिका-तंतुओं के साथ-साथ या खून में मिलकर केंद्रीय तंत्रिका तंत्र यानि मेरुदंड (स्पाइनल कोर्ड) और मस्तिष्क तक जा पहुंचता है और पोलियो की बीमारी पैदा करता है। वहां यह तंत्रिका-कोशिकाओं में पहुंचकर उनमें परिवर्तन कर देता है अथवा उन्हें नुकसान पहुंचा कर नष्ट कर देता है। जब अनेक तंत्रिका-कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं तो लकवा पड़ जाता है। रोग की शुरुआत के लक्षण ये हैं : बुखार, थकान, सिरदर्द, उबकाई आना, गर्दन में अकड़न तथा अंगों में दर्द। साथ ही टांगों में दर्द शुरू हो जाता है। 200 रोगियों में से एक में आमतौर पर टांगों में ऐसा लकवा मार जाता है, जिसे ठीक नहीं किया जा सकता। सांस लेने वाली पेशियां निश्चल होने पर 5 से 10 प्रतिशत रोगियों की मौत हो जाती है। पोलियो के लिए कोई इलाज तो नहीं, लेकिन उसकी रोकथाम संभव है।

एक बार पोलियो हो जाने पर फिर उसका इलाज नहीं हो सकता, लेकिन इस बीमारी की रोकथाम करना आसान है। बस, बच्चों को सही समय पर पोलियो वैक्सीन द्वारा प्रतिरक्षित करवा दीजिए। इसके लिए दो तरह के वैक्सीन का इस्तेमाल किया जाता है। एक में पोलियो-विषाणु को निष्क्रिय (मृत) करके सुई द्वारा उसका टीका लगाया जाता है। इसे अमेरिकी विषाणुविज्ञानी जोनास साल्क ने सन् 1952 में खोजा था। इसे आई पी वी यानि 'इनएक्टिवेटेड पोलियो वैक्सीन' कहते हैं। दूसरी तरह का वैक्सीन विषाणु को तनुकृत यानी कमजोर बना कर उसकी बूंदें पिलाई जाती हैं। इस वैक्सीन से विषाणु पूरी तरह मरता नहीं और आंशिक रूप से जीवित रहता है। इसकी खोज सन् 1960 में अमेरिकी सूक्ष्मजीव विज्ञानी अल्बर्ट साबिन ने की थी। यह ओ पी वी यानि 'ओरल (अर्थात् मौखिक) पोलियो वैक्सीन' कहलाता है। जिन देशों में बेलगाम पोलियो वाइरस अब भी पाया जाता है, वहां मुंह से पिलाया जाने वाला ओ पी वी वैक्सीन ही दिया जाता है, क्योंकि इसके लिए न तो किसी खास उपकरण की जरूरत पड़ती है और न किसी विशेष प्रशिक्षण की। इसलिए पोलियो उन्मूलन के अंतरराष्ट्रीय अभियान में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) ने पोलियो के इसी वैक्सीन को इस्तेमाल करने की सिफारिश की है। जिन देशों में बेलगाम पोलियो वाइरस पहले ही काबू में किया जा चुका है, वहां आई पी वी पोलियो वैक्सीन सुई द्वारा दिया जाता है।

भारत में सन् 1981 में पोलियो के 38,090 मामले दर्ज किए गए थे। यह आंकड़ा सन् 1985 में कम होकर 22,570 पर आ गया था। इसके दस साल बाद सन् 1995 में पोलियो के रोगी केवल 1,665 गिने गए थे। पूरे देश में सन् 2005 में केवल 35 जिलों में पोलियो के मात्र 66 रोगियों का पता चला। इनमें से अधिकतर उत्तर प्रदेश और बिहार में थे। हम सन् 2005 में देश को पोलियो-मुक्त करने का अंतरराष्ट्रीय लक्ष्य पूरा नहीं कर पाए, हालांकि लग रहा था कि हम लक्ष्य पाने के बिल्कुल करीब पहुंच चुके हैं। लगता था कि अब पोलियो को आखिरी धक्का देकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश और बिहार से भी मिटा दिया जाएगा। इसके विपरीत, पोलियो के विषाणु ने और भी तेजी से पलट कर हमला किया और सन् 2006 में 655 बच्चों को पोलियो ने जकड़ लिया। उनमें से 530 उत्तर प्रदेश के 51 जिलों में और 60 बिहार के 25 जिलों में मिले। इन दो राज्यों में पिछले कुछ महीनों में पोलियो ने पलटा खाया। इन दोनों राज्यों में बाकी देश की 10 और पश्चिमी देशों की तीन खुराक की तुलना में हर बच्चे को पोलियो के ओ पी वी वैक्सीन की 15 खुराकें पिलाई गई थीं। पोलियो के खिलाफ हमारी यह लड़ाई एक तरफ से आखिरी मोर्चे पर पहुंच गई थी कि इसने फिर से फन उठा कर सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया।

जन्म के तुरंत बाद शिशु को पोलियो के मौखिक वैक्सीन (ओ पी वी) की बूंदें पिलाई जाती हैं। इसके बाद तीन खुराकें दी जाती हैं : 14 हफ्ते बाद, 9 महीने बाद और डीपीटी यानी डिप्थीरिया, काली खांसी और टिटेनस के टीके के साथ डेढ़ साल बाद। साढ़े चार साल की आयु में बच्चे को पोलियो के वैक्सीन की बूस्टर खुराक दी जाती है। हालांकि कुछ बच्चों को मौखिक वैक्सीन की सभी खुराकें देने के बावजूद पोलियो से पूरी प्रतिरक्षा (इम्यूनिटी) नहीं मिलती। सभी बच्चों का पोलियो से बचाव करने का सबसे बेहतर तरीका यह है कि पर्यावरण में से ही पोलियो के बेलगाम विषाणु का खात्मा कर दिया जाए। यह तभी संभव है जब 5 साल से कम उम्र के सभी बच्चों में एक साथ पोलियो के वैक्सीन की खुराक मिलती रहे जैसा कि राष्ट्रीय प्रतिरक्षण दिवस में किया जाता है। इससे बेलगाम विषाणु छुट्टा नहीं घूम सकता और इस तरह पोलियो को जड़ से मिटाया जा सकता है। इसके लिए राष्ट्रव्यापी प्रतिरक्षण अभियान चलाए जाते हैं, जिनमें 4 से 6 हफ्ते के अंतर पर साल में दो दिन, पांच साल से कम उम्र के हर बच्चे को 'पल्स पोलियो प्रोग्राम' के तहत पोलियो वैक्सीन की दो खुराकें पिलाई जाती हैं।

अब सवाल उठता है कि उत्तर प्रदेश और बिहार में पोलियो की रोकथाम की हमारी रणनीति क्यों असफल रही? पोलियो विषाणु भी बहुरूपिया है। यह तीन प्रकार का होता है - टाइप-1, टाइप-2 और टाइप-3। हालांकि ये तीनों ही प्रकार के विषाणु रोग पैदा कर सकते हैं, लेकिन टाइप-1 का प्रकोप सबसे ज्यादा और टाइप-3 का प्रकोप बहुत कम होता है। पूरे विश्व में टाइप-2 पोलियो के अंतिम मामले का पता सन् 1999 में लगा था। ट्राइवेलेंट ओरल (मौखिक) पोलियो वैक्सीन (tOPV) में तीनों ही प्रकार के जीवित मगर कमजोर विषाणु होते हैं और ये विषाणु तीनों ही प्रकार के ज्ञात पोलियो के खिलाफ प्रतिरक्षा पैदा करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। पोलियो का यह वैक्सीन देने पर स्थानिक संक्रमण हो जाता है और आंतों में प्रतिरक्षा बढ़ने लगती है। सामान्यतः उत्तर

(शेष पृष्ठ 20 पर जारी)

सम्पादक : विनय बी. काम्बले
पत्र व्यवहार के लिए पता : **विज्ञान प्रसार**, सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016
दूरभाष : 26864157, फैक्स : 0120-2404437
ई-मेल : *info@vigyanprasar.gov.in*
वेबसाइट : *http://www.vigyanprasar.gov.in*

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं है।

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं बशर्ते वे पत्र-पत्रिकाएं निःशुल्क वितरित की जा रही हों जिनमें पुनर्प्रकाशन किया जा रहा हो।

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली 110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से शगुन ऑफसेट प्रा. लि., बी-3, सैक्टर-65, नोएडा (उ.प्र.) 201 301 द्वारा मुद्रित।

हेनरी प्वांकारे

''युक्तिसंगत विज्ञान का जीता-जागता मस्तिष्क''

❑ सुबोध महंती
ई-मेल : mahantisubodh@yahoo.com

''गणित के भविष्य का अनुमान लगाने का सही तरीका इसके इतिहास और इसकी वर्तमान दशा का अध्ययन है।''

हेनरी प्वांकारे (1908)

''प्वांकारे ने 500 शोध पत्रों तथा 30 पुस्तकों से 'अंतिम सर्वज्ञ' के रूप में ख्याति अर्जित की और इन्होंने गणित तथा इससे जुड़े विषयों की विविध शाखाओं में योगदान दिया। इसके मुकाबले में साधारण अंकगणित के मामले में वह थोड़े बिखरे-से, अमूर्त सोच वाले तथा अकुशल व्यक्ति थे।''

द कैंब्रिज डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट (2002)

''प्वांकारे वह अंतिम व्यक्ति था जिसने विशुद्ध एवं अनुप्रयुक्त समग्र गणित को व्यावहारिक रूप से अपना कार्य क्षेत्र बनाया। खगोल विज्ञान और गणितीय भौतिकी को अलग रख दें तो साधारणतया ऐसा सोचा जाता है कि आज के किसी भी इंसान के लिए गणित की चार मुख्य शाखाओं - अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और विश्लेषण में से किन्हीं दो से अधिक को पूरी तरह से आत्मसात कर पाना असंभव होगा, इनमें उच्च गुणवत्तायुक्त सृजनशील कार्य करना तो दूर की बात है। लेकिन, 1880 के दशक में भी, जब प्वांकारे के महान कार्य का श्रीगणेश हुआ था तो ऐसा समझा जाता था कि सर्वज्ञ गणितज्ञों में गाउस ही अंतिम व्यक्ति थे। इसलिए किसी भावी प्वांकारे के लिए संपूर्ण विषय में दखल देना असंभव नहीं होना चाहिए।''

ई.टी. बेल, मैन ऑफ मैथेमेटिक्स

वर्ष 2006 की महानतम वैज्ञानिक उपलब्धियों में से एक हेनरी प्वांकारे के प्रमेय का प्रमाण ढूंढ़ निकालना था। यह सांख्यिकी या संस्थिति विज्ञान (टोपोलॉजी) यानी अमूर्त आकारों के गणितीय अध्ययन की ही एक समस्या थी। इस उपलब्धि के महत्व का अनुमान विज्ञान पत्रिका 'डिस्कवर' के निम्न कथन द्वारा लगाया जा सकता है : ''अगर वर्ष 2100 में विज्ञान के क्षेत्र में 21वीं सदी में हुई चोटी की उपलब्धियों के बारे में *डिस्कवर* को एक फीचर निकालना पड़े तो प्वांकारे के प्रमेय के प्रमाण संबंधी लेख को ही शायद सर्वोच्च स्थान मिलेगा।'' गणित के क्षेत्र में इस प्रमेय को प्वांकारे द्वारा 1904 में प्रस्तावित किया गया था। उसका कथन इस प्रकार था : ''बिना परिसीमा वाले एक संहत त्रिविमीय प्रसमष्टि (मेनीफोल्ड) V पर विचार करें। इसके बावजूद कि आधारभूत समूह V त्रिविमीय गोले का समरूपी नहीं है तो क्या यह संभव है कि V तुच्छ या निरर्थक हो सकता है?'' यह गणित की एक महानतम अनसुलझी समस्याओं के रूप में सामने आई।

हेनरी प्वांकारे

प्वांकारे की प्रमेय के कथन को आम लोगों द्वारा ठोस गणितीय पृष्ठभूमि के बगैर समझ पाना संभव नहीं है। लेकिन, व्यापक रूप से दिक् (स्पेस) की संरचना संबंधी प्वांकारे की प्रमेय के महत्व को हम समझ सकते हैं। हम एक त्रिविमीय ब्रह्मांड में रहते हैं तथा आगे और पीछे, ऊपर और नीचे तथा दाएं और बाएं सभी संभव दिशाओं में गति करने की हमें हर तरह की स्वतंत्रता होती है। हालांकि हमें हर दिशा में गति करने की स्वतंत्रता होती है, लेकिन फिर भी ब्रह्मांड के आकार का पता लगाने में हम असमर्थ हैं। यह इसलिए क्योंकि हम ब्रह्मांड से बाहर नहीं निकल सकते और बाहर से ही इसे देखकर इसके आकार का हम पता नहीं लगा सकते। प्वांकारे को त्रिआयामी दिक् (स्पेस) को समझने में बहुत सफलता मिली, जैसे कोई भी हवाई जहाज उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम और ऊपर-नीचे की मापों से होकर उड़ता है। उसने यह समस्या या सवाल सामने रखा कि क्या दो-आयामी परिकलनों (कैल्कुलेशन) में परिवर्तन करके उससे 3-आयामी सवालों के उत्तर भी मिल सकते हैं? उसे विश्वास था कि यह संभव है लेकिन गणित से वह इसकी पुष्टि नहीं कर पाया और एक सौ वर्ष से भी अधिक समय तक यह समस्या अनुसुलझी ही रह गई। इस सवाल के उत्तर से वैज्ञानिकों को ब्रह्मांड का स्वरूप बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलेगी।

अनेक महत्वपूर्ण गणितज्ञों ने इस समस्या को सुलझाने के गंभीर प्रयास किए लेकिन 1950 के दशक तक सफलता हाथ नहीं लगी। बहरहाल, 1950 के दशक में इस दिशा में थोड़ी प्रगति हुई। सन् 1950 तथा 1960 के दशकों में यह पता लगा कि इस समस्या को अधिविमीय प्रसमष्टि के लिए हल किया जाना अधिक सरल है। स्टीफे स्माले, जॉन स्टॉलिंग्स तथा एंड्रू वालेस जैसे अनेक गणितज्ञों ने अधिविमीय प्रसमष्टि के लिए प्रमेय प्रस्तावित किए। लेकिन, प्वांकारे का प्रमेय 2002-2003 तक अनसुलझा ही रहा। जब एक रूसी गणितज्ञ ग्रिगोरी पेरेलमान ने इंटरनेट पर तीन शोध पत्र पोस्ट किए। इन तीन शोध पत्रों से 58 पृष्ठीय दस्तावेज बना। पेरेलमान ने यह नहीं कहा कि उन्होंने प्वांकारे की प्रमेय का हल ढूंढ़ निकाला है। उन्होंने अपने तीन शोध पत्रों में अमेरिकी गणितज्ञ विलियम थर्सटन द्वारा 1970 के दशक में प्रस्तावित ज्यामितिकरण (जियोमेट्रीजेशन) प्रमेय को हल करने के मुख्य चरणों की रूपरेखा प्रस्तुत की। जियोमेट्रीजेशन प्रमेय या सामान्य प्रमेय की ही सीधी परिणिति है प्वांकारे की प्रमेय। इसका

तात्पर्य यह है कि एक बार जियोमेट्रीजेशन प्रमेय का हल निकल आने पर प्वांकारे के प्रमेय का हल स्वतः ही निकल आएगा। जैसा कि अनेक महान खाजों के साथ होता है, पेरेलमान के कार्य को तुरंत नहीं समझा जा सका। विश्व भर के गणितज्ञों को यह समझने में करीब चार वर्ष लग गए कि पेरेलमान ने वास्तव में जियोमेट्रीजेशन प्रमेय का हल ढूंढ निकाला था। इस प्रक्रिया में उन्होंने पेरेलमान के मूल दस्तावेज का 500 पृष्ठ लंबा प्रारूप तैयार कर डाला और आखिरकार उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि परेलमान ने वाकई प्वांकारे की प्रमेय का हल ढूंढ़ निकाला था।

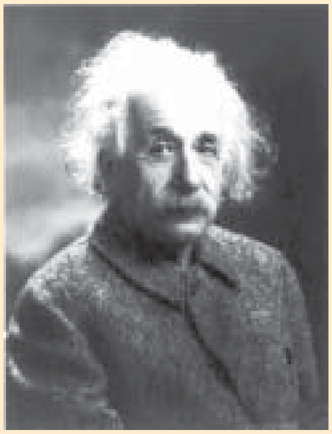

अल्बर्ट आइंस्टाइन

प्वांकारे अपने समय के 'युक्तिसंगत विज्ञान के जीते-जागते मस्तिष्क' माने जाते हैं। प्वांकारे फ्रांस के महानतम् गणितज्ञों में से एक थे। सैद्धांतिक भौतिकी में उनके योगदान भी कम महत्व के नहीं थे। विज्ञान के दार्शनिक के रूप में भी उन्होंने उत्कृष्टता का प्रदर्शन किया। प्वांकारे को अंतिम सर्वज्ञ गणितज्ञ माना जाता है। इसका आशय यह है कि उन्होंने गणित के संपूर्ण क्षेत्र में महारथ हासिल की। *ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट्स* ने उनके बारे में लिखा : "चूंकि प्वांकारे को आमतौर पर महान सर्वज्ञ यानी संपूर्ण विषय पर महारथ रखने वाले अंतिम गणितज्ञ की संज्ञा दी जाती है, उनके कार्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने के लिए समग्र गणित को लिया जाना आवश्यक है। विशुद्ध गणित में उन्होंने प्रायिकता सिद्धांत, अवकल समीकरण, संख्या सिद्धांत तथा *एनालिसिस साइट्स* (1895; साइट एनालिसिस), जिसमें संस्थिति विज्ञान के विषय को जन्म दिया, पर कार्य किया।"

एल्फ्रैड बाइनेट

प्वांकारे सांस्थितिकी बल्कि अधिक यथार्थ रूप से बीजगणित सांस्थितिकी के संस्थापक हैं। उन्होंने न केवल इस विषय को जन्म दिया बल्कि यहां-वहां बिखरे पूर्व ज्ञात परिणामों को संकलित किया तथा भावी गणितज्ञों द्वारा इस क्षेत्र में कार्य किए जाने का मार्ग भी प्रशस्त किया। उन्होंने अनेक तकनीकों का विकास किया जो सांस्थितिकी के विकास में अनिवार्य साबित हुई। प्वांकारे ने अनुप्रयुक्त गणित की लगभग सभी शाखाओं - खगोलीय यांत्रिकी, द्रव यांत्रिकी, प्रकाशिकी, वैद्युत, टेलीग्राफी, केशिकत्व, प्रत्यास्थता, ऊष्मागतिकी, विभव सिद्धांत, क्वांटम सिद्धांत, आपेक्षिकी सिद्धांत तथा ब्रह्मांडिकी में महत्वपूर्ण योगदान दिए। अवकल समीकरणों के गुणात्मक सिद्धांत पर उनके कार्य के खगोलीय यांत्रिकी में दूरगामी निहितार्थ थे। अवकल समीकरणों में अपने सिद्धांत का प्रयोग उन्होंने गणितीय निकाय के दीर्घकालीन स्थायित्व जैसे प्रश्नों पर विचार करने के उद्देश्य से किया। इस सिद्धांत संबंधी अपने परिणामों को उन्होंने *"लेस मैथड्स माउवेल्लीज डी ला मैकेनिक सेलेस्ते"* (न्यू मैथड्स इन सेलेस्टिएल मैकेनिक्स) शीर्षक अपने शोध पत्र में प्रकाशित कराया। न्यूटन की *प्रिंसिपिया* के बाद इस शोध पत्र को खगोलीय यांत्रिकी में हुए महानतम कार्य की संज्ञा दी जाती है।

प्वांकारे ने आपेक्षिकी पर भी कार्य किया। आपेक्षिकी पर उनका शोध पत्र सन् 1905 में छपा यानी उस वर्ष जब अल्बर्ट आइंस्टाइन ने आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धांत पर अपना शोध पत्र प्रकाशित किया था। दरअसल, आइंस्टाइन ने अपना शोध पत्र प्वांकारे के शोध पत्र के प्रकाशित होने के एक महीने बाद छापा। प्वांकारे के शोध पत्र का शीर्षक था "अंशतया शुद्धगतिक, अंशतया गतिक"। आपेक्षिकी पर अपने शोध पत्र में 'लारेंट्ज रूपांतरण' संबंधित लारेंट्ज के प्रमाण पर अपने संशोधन को प्वांकारे ने शामिल किया था। उल्लेखनीय है कि 'लारेंट्ज रूपांतर' शब्द प्वांकारे ने ही सुझाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्वांकारे और आइंस्टाइन एक-दूसरे से कभी नहीं मिले। यहां तक कि आइंस्टाइन ने भी यह दावा किया कि आपेक्षिकी पर प्वांकारे के शोध पत्रों को उन्होंने कभी नहीं पढ़ा। लेकिन, बाद में आइंस्टाइन ने प्वांकारे को आपेक्षिकी के प्रणेताओं में से एक के रूप में मान्यता दी। आइंस्टाइन ने एक बार यह कहा था, "लारेंट्ज को यह पहले ही आभास हो गया था कि मैक्सवेल के समीकरणों के विश्लेषण के लिए उनके नाम पर रखा जाने वाला रूपांतरण आवश्यक है, तथा प्वांकारे ने उनकी इस अंतर्दृष्टि को और भी गहरा करने का कार्य किया।"

ग्रिगोरी पेरेलमान

प्वांकारे की स्मरण शक्ति असाधारण थी। उनकी इस विशेषता पर टिप्पणी करते हुए ई.टी. बेल ने लिखा : "उनका मुख्य शौक पढ़ना था जिसमें उनकी असाधारण प्रतिभा पहले-पहल प्रकाश में आई। एक बार एक पुस्तक बड़ी रफ्तार से पढ़ लेने पर उनकी स्थाई थाती बन जाती थी। वे उसमें से किसी भी संदर्भ को कभी भी बता सकते थे। उनकी यह विलक्षण स्मरण शक्ति उम्र भर बनी रही। प्वांकारे की तरह आयॅलर, में भी यह गुण मौजूद था लेकिन कुछ कम सीमा तक। इसे हम चाक्षुष या स्थानिक स्मृति कह सकते हैं। कालिक समृति यानी बहुत पहले बीत चुकी घटनाओं के किसी अनुक्रम को अकल्पनीय यथार्थता से याद रखने की काबलियत भी उनके अंदर असाधारण रूप से मौजूद थी।"

यह रोचक बात है कि जब प्वांकारे ने अपने आप को अपने समय के महानतम गणितज्ञ के रूप में स्थापित कर लिया था तो वह बाइनेट-साइमन टेस्ट (या प्रचलित भाषा में बाइनेट टेस्ट) में बैठे। इस टेस्ट के परिणाम इतने खराब थे कि उन्हें मूर्ख मान लिया गया। उल्लेखनीय है कि दो फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिकों एल्फ्रैड बाइनेट (1857-1911) तक टी. साइमन (1873-1961) द्वारा विकसित बाइनेट-साइमन टेस्ट बुद्धि की परीक्षा है जिसमें मानसिक आयु के आधार पर प्रश्नों, समस्याओं तथा भावी कार्यों के ग्रेड तय किए जाते हैं।

हेनरी प्वांकारे का जन्म नैंसी, फ्रांस में 29 अप्रैल, 1854 को हुआ था। उनका पूरा नाम ज्यूल्स हेनरी प्वांकारे था। उनके पिता लिआं प्वांकारे (1828-1892) एक नामी-गिरामी चिकित्सक और यूनीवर्सिटी

ऑफ नैंसी में चिकित्सा के प्राध्यापक थे। उनके एक भतीजे, रेमांड प्वांकारे (1913-1920) के दौरान फ्रांस गणराज्य के राष्ट्रपति बने। प्वांकारे की बहन का विवाह एक आध्यात्मिक दार्शनिक एमिल बुत्रो बाउत्रॉक्स (1845-1921) के साथ हुआ था। अपने बाल्यकाल में प्वांकारे डिप्थीरिया का शिकार होकर बुरी तरह से रोगग्रस्त हुए थे। इस बीमारी के कारण प्वांकारे एक साल तक बोल नहीं पाए।

गैस्तॉन दारबॉक्स

प्वांकारे को आरंभिक शिक्षा उनकी प्रतिभाशाली माता यूजेनी लॉनाइस (1830-1897) ने दी। सन् 1862 में, आठ साल की अवस्था में अपनी औपचारिक शिक्षा के लिए उन्होंने नैंसी स्थित लाइसी में प्रवेश लिया। इस संस्थान का नाम बाद में बदलकर लाइसी हेनरी प्वांकारे कर दिया गया। यूनिवर्सिटी ऑफ नैंसी का नाम भी प्वांकारे के नाम पर रखा गया। लाइसी में 11 वर्ष बिताने के बाद फ्रांस और प्रुशिया की लड़ाई के कारण उनकी स्कूली पढ़ाई में बाधा पड़ी। एलसेस - लॉरेन स्थित उनका गृह प्रांत जर्मन हमले के कारण बुरी तरह प्रभावित हुआ। युद्ध के दौरान प्वांकारे ने जर्मन भाषा सीखी। उन्होंने जर्मन भाषा में लिखे समाचार बुलेटिनों को पढ़कर ही यह भाषा सीखी क्योंकि जर्मनी द्वारा कब्जा किए जाने के दौरान फ्रांसीसी में समाचारों को प्राप्त करना संभव नहीं था। जर्मन भाषा के ज्ञान ने बाद में जर्मन गणितज्ञों से उनके संपर्कों को बनाए रखने में मदद की। सन् 1871 में लाइसी से उन्होंने साहित्य और विज्ञान में स्नातक की परीक्षा पास की।

लाइसी में प्वांकारे के अध्ययन के परिणाम अच्छे रहे। संगीत और शारीरिक कसरतों को छोड़कर वे सभी विषयों में अव्वल आए। सन् 1873 में प्वांकारे ईकोल पॉलीतेक्निक तथा ईकोल नार्मेल सुपेरियरे दोनों की ही प्रवेश परीक्षाओं में बैठे। ईकोल पॉलीतेक्निक की परीक्षा में वह प्रथम आए जबकि ईकोल नार्मेल सुपीरियरे की परीक्षा में उन्हें पांचवां स्थान मिला। अपने जीवन के उस दौर में प्वांकारे इंजीनियर बनने की ख्वाहिश रखते थे; अतः उन्होंने पॉलितेक्निक में प्रवेश लिया। स्कूल की ही तरह पॉलीतेक्निक के सभी विषयों में, सिवाए रेखांकन और प्रायोगिक कार्य के, उन्होंने अपने उत्कृष्ट प्रदर्शन का परिचय दिया। चित्रांकन/रेखांकन और प्रायोगिक कार्य में खराब प्रदर्शन के चलते पॉलीतेक्निक की वार्षिक परीक्षा में प्वांकारे को द्वितीय स्थान ही मिल सका।

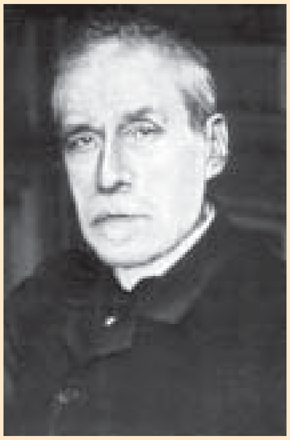

एमिल बुत्रो

पॉलीतेक्निक से पास होने के बाद सन् 1875 में प्वांकारे ने ईकोल देस माइंस (स्कूल ऑफ माइंस) में दाखिला लिया। यहां खनन इंजीनियरिंग की परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए चार वर्ष तक उन्होंने अध्ययन किया। सन् 1879 में उन्होंने न केवल खनन इंजीनियरिंग की परीक्षा पास की बल्कि अवकल समीकरणों द्वारा परिभाषित फलन के गुणधर्मों संबंधी 'डॉक्टर' की उपाधि के लिए अपना शोध प्रबंध भी प्रस्तुत किया। गणित में अपना करियर बनाने से पहले बहुत अल्पकाल के लिए खनन इंजीनियर का कार्य भी किया। उन्होंने वेसोल की खनन सेवा में एक साधारण प्रभारी इंजीनियर की हैसियत से कार्य किया। 'डॉक्टर' की उपाधि के लिए उनके शोध प्रबंध के मार्गदर्शक चार्ल्स हर्माइट (1822-1901) थे। उल्लेखनीय है कि गणित में चार्ल्स हर्माइट के सर्वाधिक प्रसिद्ध योगदान हैं : हर्माइट के बहुपद, हर्माइट के अवकल समीकरण, हर्माइट का अंतर्वेशन सूत्र तथा हर्माइट के आव्यूह। पंचम-घात समीकरण को हल करने वाले हर्माइट प्रथम गणितज्ञ थे। प्वांकारे का शोध प्रबंध अवकल समीकरणों पर था। प्वांकारे के शोध प्रबंध के परीक्षक इसके प्रथम भाग से तो संतुष्ट थे लेकिन इसके बाकी भाग के बारे में उन्होंने टिप्पणी की। उन्होंने उपाधि दिए जाने की संस्तुति तो कर दी, साथ ही यह टिप्पणी भी दी : "...शोध प्रबंध का बाकी अंश थोड़ा अस्पष्ट और संशयात्मक है जो यह प्रदर्शित करता है कि इसके प्रस्तुतकर्ता अपने विचारों को स्पष्ट और साफ तौर से व्यक्त करने में असमर्थ रहे। लेकिन, फिर भी विषय की अति दुरूहता को ध्यान में रखकर प्रस्तुतकर्ता की प्रतिभा को देखते हुए यह सिफारिश की जाती है कि एम प्वांकारे को 'डॉक्टर' की उपाधि सम्मानपूर्वक प्रदान की जाए।"

नारमेंडी स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ काएन के साथ प्वांकारे गणितीय विश्लेषण के प्राध्यापक के रूप में जुड़े। गणित में उनकी पहली मुख्य खोज - फुक्सीय फलनों (आजकल फुक्सीय फलनों को स्व-आकारी फलनों की संज्ञा दी जाती है) के सिद्धांत में अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का प्रवेश - उनके द्वारा काएन में ही पूरा किया गया। स्व-आकारी फलनों का वर्णन इस आलेख की विषय वस्तु से परे है। लेकिन, स्व-आकारी फलनों की खोज प्वांकारे ने कैसे की, उन्हीं के शब्दों में कुछ यों है : "पंद्रह दिनों तक यह सिद्ध करने के लिए मैंने जी तोड़ मेहनत की कि फुक्सीय फलनों जैसे किन्हीं फलनों का कोई भी अस्तित्व नहीं है। मैं तब बहुत ही अज्ञानी था। हर रोज अपनी काम करने की मेज पर बैठकर दो-एक घंटे काम करता था। अनेक तरह के संचयों को लेकर मैंने कोशिशें की लेकिन परिणाम शून्य ही रहा। एक दिन शाम को अपनी आदत के विपरीत मैंने ब्लैक कॉफी पी। उसके बाद में सो न सका। मेरे दिमाग में विचार उमड़ते-घुमड़ते रहे। वे सभी विचार आपस में टकराने लगे। मुझे ऐसा कहना चाहिए कि अंततः युग्म अंतःबद्ध हो गए और उन्होंने मिलकर एक स्थाई संचय का सृजन किया। अगले रोज सुबह तक मैंने यह स्थापित कर दिया था कि फुक्सीय फलनों के एक वर्ग का अस्तित्व है। ये फलन हाइपर ज्योमेट्रिक श्रेणी द्वारा प्राप्त होते है। अब परिणाम को कागज पर उतारना भर बाकी था जिसमें मुझे कुछ घंटों का वक्त लगा।"

केएन में प्वांकारे 1881 तक रहे। यहां से वह पेरिस विश्वविद्यालय चले गए। उनकी पहली नियुक्ति एनालिसिस कांफेरेंसेस के प्रभारी प्राध्यापक के रूप में हुई। सन् 1886 में सोरबौन में गणितीय भौतिकी और प्रायिकता के चेयर के लिए प्वांकारे नामांकित हुए। यह नियुक्ति उन्हें अपने हितैषी हर्माइट के सहयोग से ही मिली।

सन् 1887 में स्वीडन और नार्वे के राजा ओस्कर द्वितीय ने अपने साठवें जन्मदिन समारोह के एक हिस्से के रूप में एक गणितीय प्रतियोगिता की घोषणा की। इस प्रतियोगिता को प्वांकारे ने खगोलीय यांत्रिकी में त्रि-पिंड समस्या पर निबंध लिखकर जीता। इस निबंध में उन्होंने

निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिणामों को शामिल किया था : 1) होमोक्लिनिक बिंदुओं का पहला विवरण; 2) अव्यवस्थित (केओटिक) गति का पहला गणितीय विवरण; तथा 3) निश्चर समाकलों की अवधारणा का प्रथम मुख्य प्रयोग।

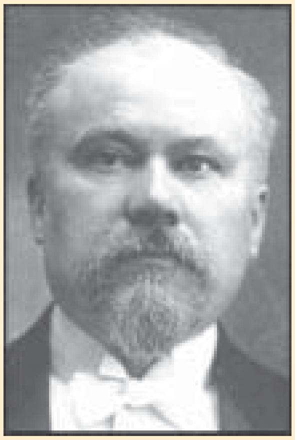

रेमांड प्वांकारे

अपने अंतिम वर्षों में प्वांकारे ने विज्ञान के सामान्य एवं दार्शनिक पहलुओं पर अपने लेख प्रकाशित किए। ये लेख बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। जब प्वांकारे ने विज्ञान के दर्शन तथा विज्ञान विधि पर लिखा, उस समय फ्रांस में विज्ञान लोकप्रिय विषय नहीं था। प्वांकारे विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में उस समय कार्यरत एक चोटी के व्यक्ति थे। उनके बारे में ह्विटरो ने लिखा : ''गणितज्ञ के रूप में ख्याति अर्जित करने के बाद उन्होंने अपनी उत्कृष्ट साहित्यिक प्रतिभा जन सामान्य को विज्ञान और गणित का अर्थ और महत्व समझाने में लगा दी।'' उनके सबसे चर्चित दार्शनिक लेखों में *साइंस एंड हाइपॉथीसिस* (1905; इसका मूल फ्रांसीसी संस्करण 1901 में छपा); *साइंस एंड मैथड* (1914; इसका मूल फ्रांसीसी संस्करण 1908 में छपा), तथा *वैल्यू ऑफ साइंस* (1907; इसका मूल फ्रांसीसी संस्करण 1904 में छपा) शामिल थे।

प्वांकारे ने बर्ट्रेंड रसेल तथा गॉटलॉब फ्रेज के दार्शनिक विचारों का विरोध किया। उन दोनों का यह मानना था कि गणित तर्क की ही एक शाखा है। उनके विचारों के विपरीत प्वांकारे का मानना था कि अंतर्दृष्टि ही गणित की प्रेरणाशक्ति है।

प्वांकारे को अनेक पुरस्कार, पदक एवं सम्मान प्राप्त हुए। सन् 1887 में वे पेरिस अकादमी के लिए चुने गए तथा 1906 में इसके अध्यक्ष बने। वे अकादमी के एकमात्र ऐसे सदस्य थे जो उसके पांच अनुभागों में से हरेक के लिए चुने गए। ये पांच अनुभाग थे - ज्यामिति, यांत्रिकी, भौतिकी, भूगोल और नौसंचालन। सन् 1893 में वह ब्यूरो देस लांगीच्यूड्स के लिए चुने गए। सन् 1894 में उन्हें रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन का फैलो बनाया गया। रॉयल सोसायटी के सिल्वेस्टर पदक पाने वाले वह प्रथम व्यक्ति थे। सन् 1908 में वह एकेडेमी फ्रैंकाएजे के लिए चुने गए तथा 1912 में वह इसके निदेशक चुने गए। उसी वर्ष प्वांकारे की मृत्यु हुई।

17 जुलाई, 1912 को प्वांकारे का देहांत हुआ। अपनी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व त्रि-पिंड समस्या के आवर्ती हलों पर अपने एक अधूरे शोध पत्र को पूरा कर उन्होंने उसे प्रकाशित कराया। एक तरह से उन्हें यह असामान्य कदम उठाना पड़ा क्योंकि उन्हें लगा, इस शोध पत्र को पूरा करने के लिए शायद वह जिंदा न बचें। इसे प्वांकारे के अंतिम ज्यामितीय प्रमेय का नाम दिया गया। जॉर्ज बिरकॉफ नामक एक युवा अमेरिकी गणितज्ञ ने 1912 में इस प्रमेय का पूर्ण प्रमाण प्रकाशित किया। प्वांकारे की प्रथम जीवनी 1913 यानी उनकी मृत्यु के एक साल बाद फ्रांस के सबसे बड़े ज्यामितिकारों में से एक गैस्टॉन दारबॉक्स (1842-1917) ने लिखी।

गणितीय खोजों के बारे में हमें प्वांकारे के इस कथन को याद रखना चाहिए : ''गणितीय खोजें, चाहे वे छोटी हों या बड़ी, कभी भी स्वतः जन्म नहीं लेती हैं। उनके अंकुरण के लिए सदा ऐसी मिट्टी चाहिए जिसमें आरंभिक ज्ञान के बीज पड़े हों तथा जिसे चेतन और अवचेतन दोनों ही किस्म के श्रम द्वारा जोता गया हो।'' प्वांकारे यह मानते थे कि वैज्ञानिकों और कलाकारों को अपने काम से एक जैसी ही आनंद की अनुभूति होती है। प्वांकारे ने लिखा : ''किसी स्वनामधन्य वैज्ञानिक और उससे भी अधिक एक गणितज्ञ को अपने काम से किसी कलाकार जैसा ही अनुभव होता है। उसका आनंद भी उतना ही महान और उसी किस्म का ही होता है।''

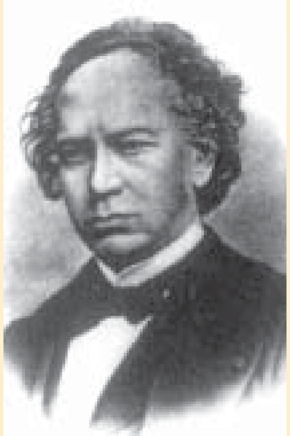

चार्ल्स हर्माइट

इस आलेख का समापन हम प्वांकारे की इस उक्ति के साथ करते हैं : ''प्रकृति को जानने की इच्छा का सबसे चिरंतन और खुशनुमा असर गणित के विकास पर पड़ा। इसे याद न रखने के लिए विज्ञान के इतिहास को पूरी तरह से भुला देना होगा।'' यह शायद विज्ञान की हर शाखा के लिए सत्य है।

संदर्भ सूची

1. ई.टी. बेल, *मैन ऑफ मैथेमेटिक्स : द लाइव्स एंड अचीवमेंट्स ऑफ द ग्रेट मैथेमेटिशियंस फ्रॉम जेनो टू प्वांकारे*, न्यूयार्क : साइमन एंड शुस्टर, 1965
2. इयोआन जेम्स, *रिमार्केबल मैथेमेटिशयंस : फ्रॉम ऑयलर टू वान न्यूमान*, कैंब्रिज, कैंब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 2005 (प्रथम दक्षिण-एशियाई संस्करण)
3. चैंबर्स बायोग्राफिकल डिक्शनरी (शताब्दी संस्करण), न्यूयार्क : चैंबर्स हाराप पब्लिशर्स लि., 1997
4. *ए डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट्स*, ऑक्सफार्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999
5. द कैंब्रिज डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट्स (द्वितीय संस्करण), कैंब्रिज, कैंब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 2002
6. डिस्कवर, जनवरी 2007 (डिस्कवर मीडिया एलएलसी, न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका)
7. इंटरनेट पर उपलब्ध जानकारी

(यह लेख वर्तमान में उपलब्ध हेनरी प्वांकारे के कार्य एवं जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर एक लोकप्रिय ढंग का संकलन है। इस लेख का उद्देश्य युवा पीढ़ी को प्वांकारे तथा उनके कार्य के विषय में और अधिक जानने के लिए प्रेरित करना है। लेखक ने इस लेख को तैयार करने में जिन स्रोतों का सहारा लिया है उनका उल्लेख कर दिया गया है। इंटरनेट पर अनेक स्रोत उपलब्ध हैं, इसलिए उनकी सूची अलग से नहीं दी गई है। लेखक उन सभी लेखकों का आभारी है जिनके लेखों/पुस्तकों की सहायता से इस लेख का संकलन संभव हुआ है।)

अनुवाद : आभास मुखर्जी

'ड्रीम 2047' का यह अंक फरवरी तथा मार्च 2007 माह का संयुक्तांक है। इसके बाद, आपको 'ड्रीम 2047' प्रत्येक माह के प्रारंभ में मिलती रहेगी।

संपादक

हमारा अंतरिक्षयान पृथ्वी

❑ डा. के. डी. अभ्यंकर

परिचय

वर्तमान युग को अंतरिक्ष-युग कहा जाता है। इसकी शुरुआत पांच दशकों से अधिक समय पूर्व हुई थी, जब अक्टूबर 1957 में तत्कालीन सोवियत यूनियन ने *स्पूतनिक* छोड़ा था। तब से हम और भी अधिक जोखिम भरे अंतरिक्ष अभियानों के बारे में सुनते आए हैं जैसे कि गागारिन के 80 मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा, आर्मस्ट्रोंग के चंद्रमा पर चरण रखना, बुध ग्रह के लिए *मैरीनर* और शुक्र ग्रह के लिए *वेनेरा* मिशन, मंगल पर जीवन की खोज के लिए *वाइकिंग* का अवतरण, *वोयजर* यानों की बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेप्चून के लिए सुदूर अंतरिक्ष में उड़ानें, *सेल्यूत* अंतरिक्ष केंद्रों में लंबी अवधि के लिए समानव उड़ानें, अंतरिक्ष-शटल के अंतरिक्ष में काम करने के तरह-तरह के अभ्यास, हेली धूमकेतु से भेंट, और हब्बल दूरबीन को अंतरिक्ष में भेजना। इससे भी अधिक रोमांचक परियोजनाओं पर काम चल रहा है, उदाहरण के लिए मंगल के उपग्रहों के लिए अभियान या शायद एक दिन मंगल ग्रह पर भी मनुष्य को उतरने का अभियान। अंतरिक्ष के बारे में अनेक विज्ञान-कथा फिल्में भी बनाई गई हैं यथा *2001-ए स्पेस ऑडिसी, स्टार वार्स, एनकाउण्टर्स ऑफ द थर्ड काइंड।* लेकिन, हममें से बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि हमारी पृथ्वी भी अंतरिक्षयान जैसी ही है जो बड़ी तेज रफ्तार से अंतरिक्ष में घूम रही है।

सबसे पहले तो हमें इस प्रश्न का ही उत्तर देना चाहिए कि पृथ्वी को अंतरिक्षयान क्यों कहा जाए? सौर मंडल के सर्वेक्षण से पता चला है कि पृथ्वी के सिवा इसके किसी दूसरे ग्रह पर जीवन नहीं है। बुध और शुक्र ग्रह सूर्य के बहुत निकट हैं, इसलिए ये इतने गर्म हैं कि इन पर जीवन हो नहीं सकता। दूसरी ओर बृहस्पति, शनि तथा अन्य बाहरी ग्रह सूर्य से इतनी ज्यादा दूरी पर हैं कि उतनी ठंड में जीवन नहीं पनप सकता। अब शेष रहा मंगल, जिसे इसके बादलों, बर्फीले ध्रुवों, मौसमी रंग-परिवर्तनों और तूफानी हवाओं के कारण काफी-कुछ धरती जैसा समझा गया था जिस पर शायद परिस्थितियां जीवन के अस्तित्व के अनुकूल सिद्ध हों। लेकिन, *वाइकिंग* अभियानों से पता चला कि ऑक्सीजन तथा मुक्त जल की कमी मंगल को भी जीवन के विकास के लिए अमंगलमय बना देती है। अतः छह प्रकाश वर्ष तक की दूरी वाले घेरे में केवल धरती ही ऐसा ग्रह है, जिसमें जीवन मौजूद है।

आकाशगंगा (मिल्की वे) में कहीं और जीवन के अस्तित्व की संभावना पर विचार करें तो हमारी इस अपनी ही मंदाकिनी में लगभग 100,000 नक्षत्रों के गिर्द मंडराते ग्रहों में उच्चकोटि की सभ्यताएं हो सकती हैं। इस प्रकार की दो सभ्यताओं के बीच औसत दूरी 500 से 1000 प्रकाश वर्ष हो सकती है। ओज़्मा, सेटी और साइक्लोप्स जैसी परियोजनाओं के तहत इनमें से कम से कम एक सभ्यता से सम्पर्क साधने का प्रयास कर रही हैं। लेकिन, अब तक कोई सफलता नहीं मिली है और अभी तो यही लगता है कि इस असीमित अंतरिक्ष में हम किसी साथी के बिना अकेले ही विचरण कर रहे हैं। इसलिए अपनी पृथ्वी को अंतरिक्षयान मानना उचित है। अतः आइए इस अंतरिक्षयान के निर्माण, प्रक्षेप-पथ (ट्राजेक्टरी), समस्याओं और अन्य पहलुओं पर विचार करें।

पृथ्वी का घूर्णन

अंतरिक्षयान को एक चक्कर देकर स्थिर किया जाता है। हमारी पृथ्वी भी प्रति नाक्षत्र दिन (साइडरियल डे) में एक बार घूम जाती है। यह खगोलीय पिंडों के हर रोज उदय और अस्त होने से पता चलता है। लगभग 500 वर्ष पूर्व भारतीय खगोल विज्ञानी आर्यभट ने इस बारे में अपने ये विचार व्यक्त किए थेः 'जिस प्रकार नदी में नौका पर बैठा व्यक्ति किनारे की वस्तुओं को पीछे खिसकते हुए महसूस करता है, वैसे ही जब हम पृथ्वी के घूर्णन से पश्चिम से पूर्व दिशा में जाते हैं, तो हमें खगोलीय पिंड पूर्व में उदित होते, आकाश में पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए और फिर पश्चिमी क्षितिज में अस्त होते हुए नजर आते हैं।'

पृथ्वी वास्तव में अपनी धुरी पर घूमती है, यह बात पहली बार फ्रांस के भौतिक विज्ञानी ज्यां बर्नार्द लिओन फूको ने सन् 1851 में अपने सुप्रसिद्ध दोलक (पेंडुलम) प्रयोग से साबित की थी। अब तो यह *अपोलो* जैसे अंतरिक्षयान से सीधे-सीधे देखी भी जा सकती है। फूको के दोलक-प्रयोग को समझने के लिए आइए हम पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर चलें। वहां पहुंचने के बाद हमें सभी दिशाएं केवल दक्षिण की ओर संकेत करती हुई प्रतीत होती हैं। इसलिए उनमें भेद करने के लिए हमें उनके अलग-अलग नाम रखने पड़ेंगे : रूसी दक्षिण, अटलांटिक दक्षिण, अमेरिकी दक्षिण, और प्रशांतीय दक्षिण, जैसे चित्र-1 में दिखाया गया है। आइए उत्तरी ध्रुव पर एक समकोणीय मीनार 'ABCD' बनाएं जिसकी दीवारें कांच की हों। अब इस मीनार की छत से डोरी बांधकर एक गोल दोलक लटका देते हैं। दोलक के गोले को एक तरफ खींच कर छोड़ देते हैं। हम देखते हैं कि

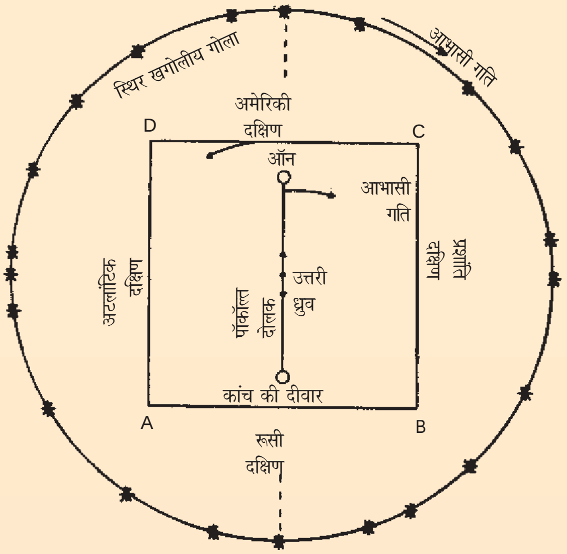

चित्र-1 : उत्तरी ध्रुव पर फॉकॉल्त दोलक संबंधी प्रयोग

दोलक एक सीध में इधर से उधर तक दोलायमान हो रहा है। अगर यह समतल या सीध मूलतः रूसी-अमेरिकी अक्ष में हो तो यह धीरे-धीरे दक्षिणावर्ती (क्लॉकवाइज) घूमता हुआ लगेगा और अटलांटिक-प्रशांतीय अक्ष तक छह घंटे बाद पहुंचेगा। इस तरह 24 घंटे में एक चक्कर पूरा करता दोलक का समतल इसी प्रकार घूर्णन करता रहेगा।

परंतु अगर हम इस प्रयोग को छह महीने लंबी ध्रुवीय रात्रि में करें तो हम देखेंगे कि दोलक का तल तारों की दृष्टि से स्थिर है जो कि कांच की दीवारों के पार दिखाई देंगे। क्योंकि कोणीय संवेग (मूमेंटम) का संरक्षण दोलक के तल को स्थिर रखने की मांग करता है, इसलिए खगोलीय गोले में तारे भी स्थिर हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दोलक के स्थिर तल के नीचे पृथ्वी वामावर्त्ती (एंटिक्लॉकवाइज) दिशा में घूर्णन कर रही है।

यदि फूको दोलक प्रयोग भौगोलिक अक्षांश Ø वाले स्थान में किया जाए तो दोलक का तल (प्लेन) 15 sin Ø डिग्री प्रति घंटा की गति से घूर्णन करता प्रतीत होगा। इस तरह 24/sin Ø घंटों में एक चक्कर पूरा कर लेगा। उदाहरण के लिए चंडीगढ़ में यह अवधि 48 घंटे और चैन्नई में 100 घंटे होगी। इसकी व्याख्या के लिए काल्पनिक बल सोचा गया है जिसे 'कोरिओलिस फोर्स' कहते हैं। जब हम गतियों पर घूर्णन के संदर्भ में विचार करते हैं, जैसे कि पृथ्वी के संदर्भ में तो यह बल पैदा होता है, ऐसी कल्पना की गई है। धरती के गोले पर की पवन-प्रणालियां इसी काल्पनिक कोरिओलिस बल से नियंत्रित होती हैं। वस्तुतः यदि हम इस बल का ध्यान न रखें तो बंदूक की गोलियां और प्रक्षेपास्त्र अपने निशाने पर कभी नहीं पहुंच पाएंगे।

भूमध्य रेखा के पास पृथ्वी के घूर्णन की रफ्तार 1,600 किलोमीटर प्रति घंटा होती है। पूर्व से पश्चिम दिशा में भूमध्य रेखा के ऊपर उड़ता जैट यदि 800 किलोमीटर/घंटा की रफ्तार से उड़ रहा हो तो धरती की इस रफ्तार की बराबरी नहीं कर सकता। इसलिए जैट के यात्री को सूर्य अब भी उदय और अस्त होता तो दिखाई देगा लेकिन 24 घंटों में नहीं, बल्कि 48 घंटों में। आकाश में सूर्य स्थिर दिखाई दे, इसके लिए हमें ध्वनि से तेज उड़ने वाले विमान में उचित रफ्तार के साथ यात्रा करनी होगी।

पुरस्सरण और केंद्रकीय गति

पृथ्वी के घूर्णन का अक्ष (एक्सिस) अंतरिक्ष में स्थिर नहीं है। पुरस्सरण (प्रीसेशन) की परिघटना के कारण क्रांतिवृत्तीय ध्रुवों के गिर्द धरती धीमी गति से घूर्णन करती है। इस परिघटना को समझने के लिए हमें चित्र-2 (क) में दिखाए तरीके से एक घूमते लट्टू पर विचार करना होगा। लट्टू के घूर्णन का अक्ष यदि ऊर्ध्वाधर (वर्टिकल) के संदर्भ में झुका हुआ दिखता है, तो पृथ्वी का गुरुत्व-बल लट्टू के द्रव्यमान के केन्द्र को फोर्स F द्वारा नीचे खींचने की कोशिश करेगा। अक्ष के निचले सिरे पर समान और विपरीत प्रतिक्रियात्मक बल F' अपना प्रभाव डालेगा। दोनों बल युग्म रूप में घूर्णन के अक्ष को क्षैतिज बनाने के लिए जोर डालेंगे। अगर लट्टू नहीं घूम रहा होगा तो वह फौरन गिर जाएगा। लेकिन, क्योंकि लट्टू घूम रहा है, तो दोनों बलों का जोड़ा ऊर्ध्वाधार के गिर्द घूर्ण के अक्ष में पुरस्सरण पैदा करेगा।

पार्थिवेतर सभ्यताओं की खोज

साइक्लोप्स : यह रेडियो डिशों का एक विशाल विन्यास है जिसे पृथ्वी से बाहर की सभ्यताओं के रेडियो-संकेतों को ग्रहण करने के लिए स्थापित किया गया है।

ओज्मा : ओज़्मा परियोजना का विचार फ्रेंक ड्रेक ने रखा था। इसका नाम 'ओज़' नामक एक काल्पनिक लोक की महारानी के नाम पर ओज़्मा रखा गया। इस काल्पनिक लोक में मानवेतर प्राणी रहते हैं। इस परियोजना के लिए फ्रेंक ड्रेक ने ग्रीन बैंक, वैस्ट वर्जीनिया (अमेरिका) में अन्य सभ्यताओं से आने वाले संकेतों को ग्रहण करने के लिए 26 मीटर व्यास का एक रेडियो टेलीस्कोप लगाया।

सेटी : सेटी का मतलब है 'सर्च फॉर एक्स्ट्राटेरिस्ट्रियल इंटेलिजेंस।' इसमें पार्थिवेतर सभ्यताओं की खोज के लिए पहले किए गए या पूर्व नियोजित सभी प्रयास शामिल हैं। इसमें भी जीवन का आभास देने वाले रेडियो संकेत पहचानने के लिए रेडियो टेलीस्कोपों का ही उपयोग करके पड़ोसी और बहुत दूर स्थित नक्षत्र लोकों में 'झांकने' का प्रयास किया गया।

अजित के केम्भवी
इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स,
पुणे - 411 007

अब तीव्र घूर्णन के कारण पृथ्वी में एक भूमध्य रेखीय उभार निकल आता है। क्योंकि, पृथ्वी के घूर्णन का अक्ष इसकी कक्षा (ओर्बिट) के तल (क्रांतिवृत्तीय तल) की ओर 66.45 अंश का झुकाव लिए है, तो उभार के दोनों ओर सूर्य और चंद्रमा के ज्वारीय बल G और G' चित्र 2 (ख) की तरह क्रांतिवृत्तीय तल के लंबवत रहेंगे। G और G' द्वारा बनाया गया युग्म पृथ्वी के घूर्णन के अक्ष को क्रांतिवृत्तीय तल के लंबवत बनाने का प्रयास करेगा। यह जो कुछ लट्टू में होता बताया गया उसके विपरीत है।

इसलिए पृथ्वी के घूर्णन का अक्ष पीछे की ओर पुरस्सरण करता है, अर्थात क्रांतिवृत्तीय ध्रुवों के गिर्द पूर्व से पश्चिम की ओर घूमता है। इस पुरस्सरण की रफ्तार बहुत कम होती है। इसको एक चक्कर पूरा करने में

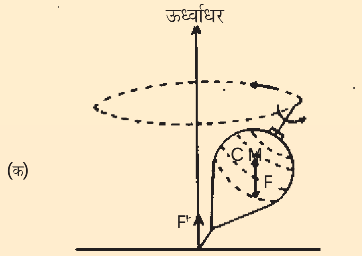

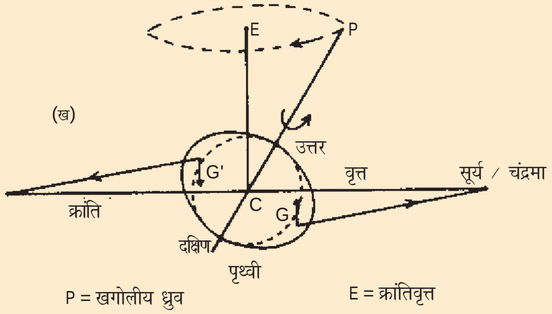

चित्र-2 : (क) लट्टू का अग्रगमन (प्रत्यक्ष)
(ख) पृथ्वी का अग्रगमन (अधोगामी)

26,000 वर्ष लगते हैं। इसके फलस्वरूप क्रांतिवृत्तीय ध्रुवों पर पृथ्वी की कक्षा के पात (नोड) पीछे की ओर गति करते हैं, अर्थात् जहां यह कक्षा भूमध्य रेखा को काटती है उस तल पर (देखें ड्रीम 2047 खण्ड 7, अंक 2)। यह पुरस्सरण गति *अनानचलन* भी कहलाती है, जो *नक्षत्रों* की दृष्टि से एक भारतीय नक्षत्र में लगभग 950 वर्षों की गति से ऋतुओं को पीछे खिसका देती है। यही कारण है कि जो *मकर संक्रमण* (या संक्रांति) सिद्धांत ज्योतिष के काल में लगभग 1,500 वर्ष पहले 22 दिसंबर को हुआ करता था, वह अब पुरस्सरण गति के कारण 14 जनवरी को होने लगा है। इसलिए अब यह सूर्य के *उत्तरायण* होने का प्रतीक नहीं रहा। इसी प्रकार वेदांग ज्योतिष के काल में जब सूर्य *धनिष्ठा नक्षत्र* में प्रवेश करता था, तब *'उत्तरायण'* हुआ करता था। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वेदांत ज्योतिष का काल 1200 ईसा पूर्व रहा होगा। अतः पुरस्सरण की परिघटना प्राचीन इतिहास की काल गणना के लिए उपयोगी खगोलीय विधि है, लगभग उसी तरह जैसे पुरातत्व विज्ञानी रेडियोएक्टिव कार्बन की विधि से पुरानी वस्तुओं की आयु निर्धारित करते हैं।

घूर्णन के अतिरिक्त अंतरिक्षयान के रूप में हमारी पृथ्वी एक और धीमी गति करती है, जो चंद्रमा से संबंधित है। हम जानते हैं कि चंद्रमा को धरती के गिर्द एक परिक्रमा पूरी करने में 27.32 दिन लगते हैं। संयोगवश इसी कारण

चंद्रमा के पथ में 27 नक्षत्र पड़ते हैं यानि एक दिन में एक नक्षत्र। वस्तुतः चंद्रमा और पृथ्वी अपने द्रव्यमान के उभयनिष्ट केंद्र के चारों ओर घूमते हैं, जिसे 'गुरुत्वकेन्द्र' बेरीसेंटर कहते हैं। यह बिंदु पृथ्वी के केंद्र से लगभग 4,800 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है यानि धरातल से लगभग 1,600 किलोमीटर नीचे। इस बिंदु के गिर्द पृथ्वी 45 किलोमीटर/घंटा की गति से घूर्णन करती है। किसी कार या रेलगाड़ी से इस गति की तुलना करें तो वह एक चक्कर 27.32 दिनों में पूरा करेगी। यही पृथ्वी की केंद्रकीय गति है।

पृथ्वी का परिक्रमण

सभी जानते हैं कि चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों सूर्य की परिक्रमा करते हैं और एक साल में सूरज के गिर्द एक चक्कर लगाते हैं। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है, इसकी पुष्टि सन् 1727 में हुई थी। उस समय अंग्रेज खगोल विज्ञानी जेम्स ब्रेडली ने नक्षत्रीय प्रकाश के विपथन की खोज की थी। इसे हम इस तरह समझने का प्रयास कर सकते हैं :

यह सामान्य अनुभव की बात है कि जब हम वर्षा में जा रहे होते हैं और बूंदें सीधी नीचे की ओर गिर रही हों तो पांव न भीगें इसके लिए हम छाते को अपने आगे की ओर झुका लेते हैं यानि अपनी गति की दिशा में, जैसा कि चित्र-3 (क) में दिखाया गया है। जितनी तेजी से हम चलेंगे छाता उतना ही ज्यादा झुकाना पड़ेगा, क्योंकि झुकाने का कोण हमारे चलने की रफ्तार और वर्षा की बूंदों की गति के अनुपात पर निर्भर करता है। इसी बात को हम खगोलीय दृष्टि से देखें, तो टेलीस्कोप से तारों को देखने के लिए छाते की जगह टेलीस्कोप का अभिदृश्यक (ओबजेक्टिव) लेंस रखना होगा और बूंदों की जगह प्रकाश के फोटॉन रखने होंगे। इस में अंतर केवल यह है कि जहां छाता पैरों को सूखा रखने के लिए बूंदों को रोकने की कोशिश करता है, वहीं टेलीस्कोप का लेंस फोटॉन कणों को पकड़ता है और आईपीस तक लाता है। अपनी कक्षा में पृथ्वी की गति के कारण हमें टेलीस्कोप को पृथ्वी की गति की दिशा में झुकाना पड़ेगा जैसा कि चित्र-3 (ख) में दिखाया गया है। क्योंकि, पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है तो जैसे-जैसे पृथ्वी की गति में परिवर्तन होगा, इसी के अनुसार हमें टेलीस्कोप को झुकाना होगा। उसी गति-परिवर्तन के कारण वर्ष के दौरान तारे का बिंब एक दीर्घवृत्त बनाता है, जैसा कि चित्र-4 में दिखाया गया है। क्रांतिवृत्तीय ध्रुवों के निकट के तारों के लिए यह दीर्घवृत्त वृत्ताकार बन जाता है, जबकि क्रांतिवृत्तीय तल वाले तारों के लिए इसका पतन सीधी रेखा में हो जाता है। इसी परिघटना को तारों का 'विपथन' कहते हैं।

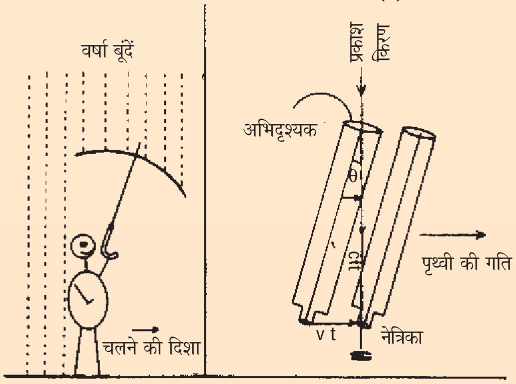

चित्र-3 : (क) वर्षा में चलता आदमी (ख) तारों की रोशनी का विपथन

विपथन क्रांतिवृतीय का a सेमी-मेजर अक्ष V/C रेडियनों के बराबर है, जिसमें 'V' है अपनी कक्षा में पृथ्वी का वेग (विलोसिटी) और C है प्रकाश का वेग। a का मान सभी नक्षत्रों के लिए 20''.49 (9.934×10^{-5} रेडियन) पाया गया है क्योंकि प्रकाश की गति $3 \times 10^{+5}$ किमी./सेकेंड।

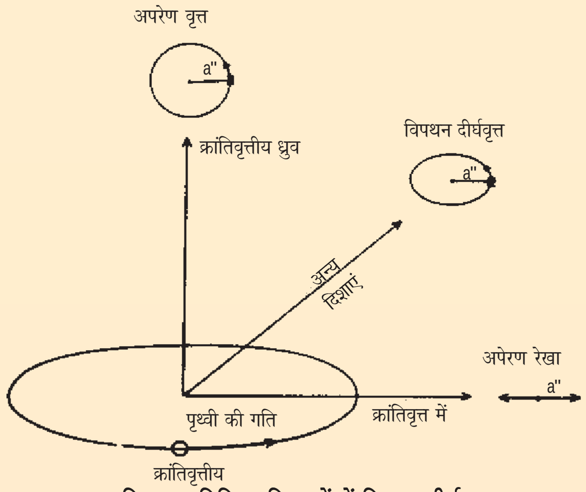

चित्र-4 : विभिन्न दिशाओं में विपथन दीर्घवृत

सूर्य की गतियां

वस्तुतः अंतरिक्ष यान के रूप में हमारी पृथ्वी और भी तेज गति से दौड़ रही है, क्योंकि सूर्य भी वेगा नक्षत्र की ओर 72,000 किलोमीटर प्रति घंटे की गति से चलायमान है। इसके फलस्वरूप सौर मंडल के पृथ्वी सहित सभी अन्य ग्रह, उपग्रह, उल्कापिंड और धूमकेतु भी उसी गति से घूम रहे हैं, एक तरह से पिट्ठू जैसी सवारी गांठते हुए।

गति का विराम

पृथ्वी की 10 लाख किलोमीटर प्रति घंटा से अधिक उच्च गति इतनी समरूप और सहज है कि हम उसे बिलकुल भी महसूस नहीं करते। हम समरूप गति और विराम में भेद नहीं कर पाते। यह हमें आत्मा के संबंध में उपनिषद् की इस उक्ति का स्मरण दिलाता है कि 'अदेजाति, तन्नेजाति' मतलब यह कि 'वह गतिशील है; वह गति नहीं करता।'

-के.डी. अभ्यंकर, ईशावास्योपनिषद्, 5

पड़ोस के नक्षत्रों में सूर्य की गति अंतरिक्ष के दो गोलार्धों में नक्षत्रों के उपगमन और पश्चगमन की परावर्तित गति के रूप में देखी की जाती है। इसे चित्र-5 में दर्शाया गया है। क्योंकि सूर्य A की ओर v रफ्तार से गति करता और यहां A सूर्य की गति का शीर्ष या अग्रक (एपेक्स) है, इसलिए सभी नक्षत्र ऐसा लगता है, मानो विपरीत दिशा में जा रहे हों, यानि प्रतिअग्रक (एंटेपेक्स) A' की ओर। इनकी भी रफ्तार v है। जो नक्षत्र अग्र A की दिशा की सीध में हैं उनकी उपगमन की गति अधिकतम होती है। इसको वर्णक्रम-रेखाओं में सूक्ष्मतर तरंगदैर्ध्यों की ओर डोपलर विचलन के रूप में देखा जाता है और $\Delta\lambda = v\lambda /c$ से व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार जो नक्षत्र प्रतिअग्रक A' की दिशा की सीध में होते हैं, उनके पश्चगमन की अधिकतम गति को वर्णक्रम-रेखाओं में दीर्घतर तरंगदैर्ध्यों की ओर डोपलर विचलन के रूप में देखते हैं। इसे $\Delta\lambda = + v\lambda /c$ से व्यक्त करते हैं। वे नक्षत्र जो लंबवत दिशा में होते हैं, जैसे कि वे जो महावृत्त BB' में

अवस्थित होते हैं, कोई भी गति नहीं करते, न अग्रगमन न पश्चगमन। लेकिन इनमें केवल अनुप्रस्थ यानी आड़ी गति होती है। यह आकाश में A' की ओर उनकी स्थिति में वार्षिक विचलन के रूप में देखा जाता है। इसको 'उचित गति' भी कहा जाता है। जैसा कि चित्र 5 में दिखाया गया है, माध्यमिक स्थिति वाले नक्षत्र अग्रगमन और पश्चगमन के भिन्न वेग प्रदर्शित करते हैं।

सूर्य के निकट के सभी नक्षत्र आकाशगंगा के चारों ओर भी घूमते हैं। आकाशगंगा में विभिन्न दिशाओं में रेडियो खगोल विज्ञानियों द्वारा प्रेक्षित हाइड्रोजन की 21-सेंटीमीटर रेखा के डोपलर-विचलन में यह स्पष्ट रूप से देखा गया। सूर्य सहित ये सभी नक्षत्र सिग्नस तारामंडल की दिशा में गति करते हैं। यह गति आकाशगंगा के केंद्र में उनको जोड़ने वाली रेखा के लंबवत् होती है। यह धनु (सेजीटेरियस) राशि की दिशा में अवस्थित होती है। उनकी रफ्तार 90,000

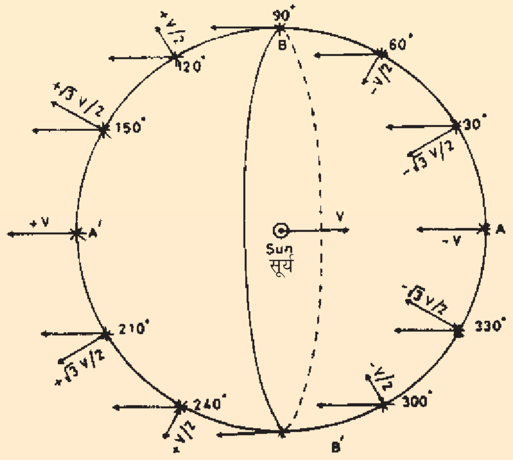

चित्र-5 : ब्रह्मांड के दो गोलार्द्धों में पड़ोसी नक्षत्रों के संदर्भ में सूर्य की गति

किलोमीटर प्रति घंटा है और वे आकाशगंगा के केंद्र के चारों ओर का एक चक्कर 24 करोड़ वर्ष में लगा पाते हैं। इस गति के साथ आकाशगंगा के तल के लंबवत् एक ऊपर-नीचे वाली गति भी जुड़ी होती है और इसकी अवधि 6 से 7 करोड़ वर्षों की होती है। हमारा सूर्य और पृथ्वी सहित उसका पूरा सौर परिवार भी इन गतियों में भाग लेता है।

आकाशगंगा की गतियां

हमारी आकाशगंगा भी स्थिर नहीं है। यह एंड्रोमेडा मंदाकिनी की ओर 350,000 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से दौड़ रही है। यह इन दोनों के बीच परस्पर आकर्षण के कारण होता है। लेकिन, यदि हम उन एक अरब के करीब मंदाकिनियों को देखें जो ब्रह्मांड को बनाने वाली ईकाइयां हैं तो पता चलता है कि वे हम से दूर भागती जा रही हैं। इस पश्चगमन की रफ्तार दूरी के अनुपात में बढ़ती जाती है। इसका पता हब्बल नामक वैज्ञानिक ने लगाया था। इस विस्तार की व्याख्या ब्रह्मांड की उत्पत्ति के महाविस्फोट (बिगबैंग) सिद्धांत के आधार पर की गई है। लेकिन, अगर इस सरल हब्बल-प्रवाह पर ध्यान दें तो प्रत्येक मंदाकिनी में संकेंद्रित पदार्थ के अनुसार अपनी खास गति होती है। शुरू-शुरू में वैज्ञानिक सर्वत्र व्याप्त काल्पनिक ईथर के संदर्भ में पृथ्वी की परम गति की बात करते थे। लेकिन, अब हमें हब्बल-प्रवाह के संदर्भ में प्रेक्षक की गति पर भी ध्यान देना होगा। यह पृथ्वी की अन्य सभी गतियों के साथ सारणी-1 में प्रस्तुत है :

पृथ्वी का गठन और इतिहास

अब आइए वापस अपने अंतरिक्षयान पर लौटें और इसके गठन और आंतरिक बनावट पर विचार करें। पृथ्वी रूपी अंतरिक्षयान कोई साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व बना था। माना जाता है कि पृथ्वी सौर-नीहारिका (नेबुला) के अवशेषों से अन्य ग्रहों के साथ ही बनी। सूर्य भी पृथ्वी से लाखों वर्ष पूर्व इसी सामग्री से बना था। हालांकि सभी ग्रह समान पदार्थ से बने हैं, लेकिन प्रत्येक ग्रह अपने आप में अनूठा है। आदिकालीन पृथ्वी में अन्य चट्टानी ग्रहों यानि बुध और शुक्र की तरह गैस से अधिक धूल थी और सूर्य के अधिक निकट होने के कारण यह इनसे

सारणी 1 : पृथ्वी की गतियां

गति	दिशा	गति (किमी/घंटा)
1. घूर्णन	पश्चिम से पूर्व	1600 (भूमध्य रेखा पर)
2. केंद्रकीय गति	पश्चिम से पूर्व	45
3. परिक्रमण	पश्चिम से पूर्व	108,000
4. सूर्य की गति	वेगा की ओर	72000
5. मंदाकिनीय गति	सिग्नस की ओर	900,000
6. आकाशगंगा	एंड्रोमेडा की ओर	350,000

अपेक्षाकृत अधिक गर्म भी थी। इसके फलस्वरूप सूर्य और बृहस्पति की तुलना में पृथ्वी पर हाइड्रोजन और हीलियम जैसी हल्की गैसों का अनुपात अपेक्षाकृत कम है।

निर्माण के बाद धरती गरम होनी शुरू हुई। एक तो सघनता बढ़ने के कारण और आंशिक तौर पर इसके भीतर रेडियोएक्टिव तत्वों से निकली ऊर्जा के कारण धरती ज्यादा गरम हुई। इसका अंदरूनी हिस्सा गर्मी से पिघला और लोहे जैसे भारी तत्व पृथ्वी के केन्द्र में पहुंच गए। लोहा और निकल गर्मी से पिघल कर द्रव में बदल गए थे और इनके घूर्णन से पृथ्वी दो ध्रुवों वाले विशाल चुंबक में बदल गई। पृथ्वी के बाहरी आवरण में अब भी रेडियोएक्टिव ऊर्जा उत्सर्जित हो रही है , जिससे संवहन (कनवैक्शन) पैदा हुआ और महाद्वीपीय विवर्तन या विचलन जैसी भूवैज्ञानिक क्रियाएं पैदा हुई। इसी प्रक्रिया से पृथ्वी पर महाद्वीप, महासागर और वायुमंडल आदि बने। इस तरह इन तमाम ग्रहीय कार्यकलापों के फलस्वरूप, बाद में पृथ्वी पर जैव विकास की नींव रखी गई।

वर्तमान अभिमत के अनुसार पृथ्वी के वायुमंडल में प्रारंभ में केवल मीथेन, अमोनिया और नाइट्रोजन जैसी अपचयी गैसें थीं। वायुमंडल में विद्युत विसर्जन से पहले प्रोटीन और फिर डी एन ए और अंत में अवायुजीवी (एनारोबिक) प्रकृति के सचेतन जीव बने। इसके बाद हरे पौधों के पदार्पण से वायुमंडल में ऑक्सीजन का अंश बढ़ने लगा और इस तरह सांस के साथ ऑक्सीजन लेने वाले प्राणी अस्तित्व में आए। पराबैंगनी और अन्य तेज विकिरणों की क्रिया से उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) हुए और धीरे-धीरे जीवों के अधिक जटिल रूपों की उत्पति हुई। इस तरह सबसे बाद में, दस या बीस लाख वर्ष पूर्व मानव के आदिम पुरखे प्रकट हुए। हिंदू पौराणिक गाथाओं में वर्णित दशावतार संयोग से इस प्राणि विकास का प्रतीक बन गया है। ये अवतार इस क्रम में हुए बताए जाते हैं : *मत्स्य* (मछली) जो पानी में रहती है, *कूर्म* (कछुआ) जो जल-थल दोनों में रहने वाला उभयचर है, *वाराह* (सूकर) जो स्तनधारी प्राणी है, *नरसिंह* जो आधा पशु और आधा मानव है, जिसकी तुलना हम ऐप या कपि से कर सकते हैं, और *वामन* जो बौना मानव है, इत्यादि।

हमारे अंतरिक्षयान पर मंडराते खतरे

प्रारंभ में मानव ने तकनीकी क्षमताएं बहुत धीरे-धीरे अर्जित कीं। वह पाषाण युग, लौह युग आदि से गुजरता हुआ आधुनिक औद्योगिक क्रांति तक पहुंचा जो पिछले तीन सौ वर्षों में मानव के विकास के चरमोत्कर्ष की प्रतीक है। वह अब एक ओर सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु का ज्ञान प्राप्त कर चुका है तो दूसरी ओर विशाल ब्रह्माण्ड को भी माप रहा है। परमाणु-विस्फोट, हरित क्रांति, हृदय प्रतिरोपण, परखनली शिशु, कंप्यूटर, अंतरिक्ष यात्राओं आदि के द्वारा मानव ने अपनी महान प्रतिभा और इच्छा शक्ति की रोमांचक उपलब्धियों का प्रदर्शन किया है। लेकिन इस वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के साथ ही मानव के सामने नई-नई समस्याएं भी आ रही हैं, जैसे जनसंख्या-विस्फोट, ऊर्जा-संकट, पर्यावरण प्रदूषण और नाभिकीय युद्ध की विभीषिका। अब तो उसे यह चिंता भी सताने लगी है कि कहीं यह प्रौद्योगिक प्रगति अंततः मानव जाति ही नहीं, बल्कि पृथ्वी नामक अंतरिक्ष यान पर संपूर्ण बहुमूल्य जीवन का ही अस्तित्व न मिटा दे। लेकिन एक बार यह समझ लेने से कि पृथ्वी एक अंतरिक्ष यान की तरह सीमित स्थान और संसाधनों वाली है, मनुष्य में सामने खड़े संकटों से निपटने की कुशलता अर्जित करने की व्यग्रता पनपेगी। हम आशा करते हैं कि आपस में लड़-झगड़ कर नष्ट हो जाने के बजाय मानव अनंत ब्रह्मांड की गहन खोज के लिए अंतरिक्ष अभियानों पर ध्यान देगा।

धरती मां की वंदना

ग्रहों की पांत में तीसरी
जीवनदायिनी धरती मां, देती है हर्ष।
घूर्णन से बनते दिन-रात,
परिक्रमण से रचती ऋतुएं और वर्ष।।
आठ और एक तिहाई मिनट में
पहुंचती है यहां तक सूर्य-किरण।
सेकेण्ड के सातवें हिस्से में,
रेडियो तरंगें बनतीं कटि का आभूषण।।

भीतर भरा पिघले लोहे का लावा,
इसे बनाता दो-ध्रुवी चुंबक।
सौर-लपटों की भभक रोकती,
ऊंचाई पर वॉन एलन बेल्ट।।

अंतस्थल ढकती सिलिकन की परत,
जो रेडियो एक्टिविटी से गरमाए।
दे यही बाहरी आवरण को संवहन और गति,
कभी ज्वालामुखी बन फट जाए।।

भू-वैज्ञानिक हलचल से बनते महाद्वीप, महासागर
मनमोहक घाटियां, पर्वत शिखर।।
गैसों से बनता इसका वायुमंडल
जो बनाए आसमान का नीला प्रभामंडल।।

विकास से पनपती प्रजातियां धरा पर
आदम की संतान मनुज है सबसे ऊपर,
अपने यानों से करके अंतरिक्ष का भ्रमण,
करता हे, मां धरती तेरा वंदन।।

स्पुतिनिकों से खोजा, कहीं तो होगा पृथ्वी सा आकर्षण
पर नहीं मिला कहीं धरा सा जीवन,
निहारता है नीली स्फटिक मणि-सी धरती को,
विस्मय से भर जाता है भावुक मन।

एक नैसर्गिक चांद साथ,
और, दोनों का उज्ज्वल भविष्य
जब मंगल पर होगा मानव
देखेगा यह अद्‌भुत दृश्य!

ऊपर दी गई मानव-निर्मित आपदाओं के अलावा भी आइए देखें हमारे अंतरिक्षयान पर क्या-क्या संकट हैं। हमारे सौर मंडल में अनेक विशाल पिंड हैं : सूर्य तो है ही, उसके अतिरिक्त आठ ग्रह और उनके उपग्रह हैं, कुछ हजार उल्का पिंड हैं और लाखों धूमकेतु हैं। क्या कोई ऐसी आशंका है कि इनमें से कोई धरती से टकरा जाए और इसको विध्वंस कर दे ? आकाशीय पिंडों के विशेषज्ञों ने इस समस्या का गहराई से विश्लेषण किया है। उन्होंने पता लगाया है कि हमारा सौर मंडल लगभग स्थिर है और किन्ही भी दो पिंडों के आपस में टकराने के आसार नगण्य हैं। इसलिए कम से कम इस लिहाज से तो हम सब सुरक्षित हैं। भारत में जन्मे खगोल विज्ञानी प्रो. एस. चन्द्रशेखर ब्रह्माण्ड संबंधी अनुसंधानों के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किए गए थे। उन्होंने गणना करके पता लगाया कि सूर्य कभी भी किसी दूसरे तारे से नहीं टकरा सकता।

लेकिन, सूर्य की विकास यात्रा से एक और खतरा पैदा हुआ है। इस समय सूर्य तापनाभिकीय अभिक्रिया से हाइड्रोजन को हीलियम में बदलकर अपनी ऊर्जा पैदा करता है। अब से कोई पांच अरब वर्षों के बाद सूर्य के केंद्र में मौजूद तमाम हाइड्रोजन खत्म हो जाएगी। तब तापमान इतना ज्यादा नहीं होगा कि हीलियम को कार्बन में बदल सके। इसलिए सूर्य का मध्य भाग सिकुड़ने लगेगा और उसका आवरण फैलता जाएगा। दूसरे शब्दों में सूर्य एक लाल दानव बन जाएगा। जिस दिन ऐसा हुआ उसी दिन से सूर्य अपना विस्तार इतना कर लेगा कि हमारे अंतरिक्षयान को भी निगल जाएगा और उस नरक में पृथ्वी सहित हम सभी समा जाएंगे। लेकिन, इस दूरस्थ संकट के लिए अभी से परेशान होने की जरूरत नहीं है। हमें आशा करनी चाहिए कि जल्दी ही मानव जाति आकाशगंगा के अन्य ग्रहों पर अपनी बस्तियां बसा लेगी।

संदर्भ

1. के.डी. अभ्यंकर, *होराइजंस ऑफ फिजिक्स*, संपादक ए. डब्ल्यू. जोशी (वाइली ईस्टर्न, नई दिल्ली, 1989), पृ. 333-334

प्रो. के.डी. अभ्यंकर प्रसिद्ध नक्षत्र भौतिकीविद् एवं विज्ञान संचारक हैं। आप हैदराबाद में रहते हैं। पता है : फ्लैट जी -3, शुभ तुलसी, 12-13-625, तर्नाका, सिकंदराबाद 500017

अनुवाद : डॉ. रमेश दत्त शर्मा

हिदेकी युकावा

मेसॉन सिद्धांत के प्रवर्तक

❑ एस. राजशेखर
ई-मेल : rajasekar@physics.bdu.ac.in

"वास्तविकता निर्मम होती है। सरलता मिटा दी जाएगी। वास्तविकता परिवर्तनशील है और उसका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। सारा संतुलन नष्ट होने वाला है। वास्तविकता जटिल होती है। उतावले निर्णयों का कोई औचित्य नहीं है।"
- हिदेकी युकावा

कण भौतिकी में, मेसॉन एक समाकल चक्रण (इंटीग्रल स्पिन) वाला बोसॉन है जो क्वार्क और प्रतिक्वार्क की समसंख्या से बना होता है। क्वार्क और प्रतिक्वार्क परस्पर मुख्यतः प्रबल बलों द्वारा बंधे होते हैं और वे एक दूसरे के चारों ओर वैसे ही चक्कर लगाते रहते हैं जैसे कि पृथ्वी और चंद्रमा एक दूसरे के चारों ओर। क्वार्क और प्रतिक्वार्क केवल कुछ विशिष्ट ढंगों से ही एक दूसरे की परिक्रमा करते हैं क्योंकि उन्हें क्वांटम यांत्रिकी के नियमों का पालन करना होता है और प्रत्येक कक्षा एक भिन्न द्रव्यमान वाले भिन्न मेसॉन से संबद्ध होती है। मेसॉनों के द्रव्यमान में 140 MeV से लगभग 10 GeV तक की विविधता होती है। सभी मेसॉन अस्थाई होते हैं। क्वार्क के गुणों और परस्पर क्रियाओं के अध्ययन के लिए मेसॉन एक उपयोगी साधन के रूप में काम आते हैं। क्वार्क पदार्थ की मूलभूत इकाइयां हैं और इन्हीं से हेड्रान बनते हैं। हेड्रॉन (वे उपपरमाण्विक कण जो प्रबल परस्पर क्रिया के कारण प्रतिक्रिया करते हैं) से नए क्वार्कों की पहचान भी की जा सकती है। मेसॉन की खोज का श्रेय जापानी वैज्ञानिक और नोबेल पुरस्कार विजेता हिदेकी युकावा को जाता है।

हिदेकी युकावा

युकावा का जन्म टोकियो, जापान में 23 जनवरी 1907 को हुआ था। वे ताकुजी ओगावा और कोयुकी ओगावा के तीसरे पुत्र थे। उनके पिता क्योटो विश्वविद्यालय में भूविज्ञान के प्रोफेसर थे। उनके बचपन में क्योतो में घर इस तरह बनाए जाते थे कि उनमें रहने वालों का बाहरी दुनिया से संपर्क नहीं रह पाता था। बाद में, युकावा ने लिखा कि ऐसा बंद वातावरण बढ़ने वाले बच्चे में कल्पनाशीलता और रोमानी स्वभाव को बढ़ावा देता है। उन्होंने 1929 में क्योतो विश्वविद्यालय से स्नातक शिक्षा पूरी की और वहीं व्याख्याता हो गए। विद्यार्थी जीवन में वे अक्सर बिना किसी से एक शब्द बोले सारा दिन किताबें, वैज्ञानिक पत्रिकाएं और शोध पत्रिकाएं पढ़ने में बिता देते थे। 1933 में वे ओसाका विश्वविद्यालय चले गए जहां से 1938 में उन्होंने पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

युकावा 1939 में क्योतो विश्वविद्यालय में सैद्धांतिक भौतिकी के प्रोफेसर बने और उन्होंने 1950 तक वहां काम किया। वर्ष 1950-53 के दौरान वे अमेरिका के न्यू जर्सी, प्रिंस्टन में इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज और न्यूयार्क में कोलंबिया यूनिवर्सिटी में रहे। 1953 में वे क्योतो वापस आए और ताकेहारा में रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर फंडामेंटल फिजिक्स के निदेशक बन गए जिसका नाम अब उनके सम्मान में युकावा इंस्टीट्यूट फॉर थ्योरेटिकल फिजिक्स रख दिया गया है।

युकावा ने मूल कणों के लिए एक अ-स्थानीय फील्ड सिद्धांत विकसित किया। उन्होंने बताया कि एक अ-स्थानीय सिद्धांत के लिए सापेक्षवादी तरीके से समीकरण कैसे प्राप्त किए जाते हैं और बताया कि मूल कणों का द्रव्यमान स्पैक्ट्रम किस प्रकार प्राप्त किया जाता है। युकोवा ने के-कैप्चर की भी भविष्यवाणी की, जिसमें नाभिक निम्न-ऊर्जा हाइड्रोजन इलैक्ट्रॉन को अवशोषित कर सकता है। उन्होंने अपने सिद्धांत में प्रसिद्ध युकावा विभव को शामिल किया। उन्होंने मूल कण मेसॉन की उपस्थिति की भविष्यवाणी की और मेसॉन सिद्धांत के संस्थापक बने। उनकी धारणा थी कि आभासी कण में लघु परास का प्रबल केंद्रीय बल होता है। इन कणों को पाइ (pi) मेसॉन या पाइऑन कहते हैं। उन्होंने 1938 में मध्यवर्ती वाहक बोसॉन की भी भविष्यवाणी की जो कमजोर पारस्परिक क्रिया में मध्यवर्ती भूमिका निभाता है।

युकावा के काम से पहले माना जाता था कि परमाणु का नाभिक प्रोटॉन और न्यूट्रान से बना है। ये मूल कण केंद्रक में कैसे बंधे रहते थे, यह रहस्य ही था। उन्होंने 1934 से इस समस्या पर काम करना शुरू किया और अक्सर वे रात में इसके बारे में सोचते हुए जागते रहते थे। वे अपने बिस्तर के पास एक नोटबुक रखते थे ताकि अपने किसी भी विचार को तुरंत नोट कर सकें। उन्हें कई विचार आए लेकिन अंत में वे निराधार सिद्ध हुए। संयोग से रात में उन्हें यह बोध हुआ कि बलों की सामर्थ्य और संबद्ध कणों के द्रव्यमान के बीच कोई संबंध होना चाहिए।

यह सर्वविदित है कि दो विद्युत आवेशित कणों के बीच वैद्युत चुंबकीय बल में $1/r^2$ के रूप में अंतर होता है, जहां r कणों के बीच की दूरी है। यह केवल तब नष्ट होती है जब कण अनंत रूप से विलग हो जाते हैं। आवेशित कणों से बल उनके बीच फोटॉनों की अदला-बदली से उत्पन्न होता है। इस दिशा में काम करते हुए युकावा ने नाभिकीय बलों के सिद्धांत की खोज की। चूंकि अकेले प्रोटॉनों से स्थायी नाभिक नहीं बन सकता क्योंकि उनके पारस्परिक कूलॉमी प्रतिकर्षण के कारण ऐसी संरचना संभव नहीं थी, इसलिए उन्होंने सुझाया कि प्रोटॉनों और न्यूट्रानों के बीच एक प्रबल आकर्षण बल है जो बहुत छोटे परास में उत्पन्न होता है। उनका तर्क था कि बड़े कण इस प्रबल न्यूक्लिऑन बल में मध्यवत्ती भूमिका निभाते हैं जो न्यूक्लिआनों के बीच आगे-पीछे उछलते रहते हैं।

युकावा का मानना था कि विनिमय कण फोटॉन से कुछ भिन्न होने चाहिए और उन्होंने एक युग्मनांक (कपलिंग कांस्टेंट) G सुझाया। G के मान और बदले गए कणों के द्रव्यमानों को नाभिकीय बल की लघु परास के लिए उत्तरदाई होना चाहिए। इससे उन्हें युकावा विभव $V(r) = -G^2\exp(-\mu r)/r$, को प्रस्तुत करने में मदद मिली। इस सूत्र में r न्यूट्रॉन और प्रोटॉन के बीच की दूरी, μ कण का शेष द्रव्यमान और G एक अचर (कांस्टेंट) है। ऋण चिह्न दिखाता है कि बल आकर्षित करता है। जैसे-जैसे μ बढ़ता जाता है, r के छोटे से छोटे मान के लिए

अंश (न्यूमेरेटर) तेजी से बहुत छोटा हो जाता है। अब G और μ को 10^{-13} से. मी. की परास में समायोजित किया जाना चाहिए।

प्रायोगिक आंकड़ों का प्रयोग करके युकावा ने घोषणा की कि नए कण का द्रव्यमान इलैक्ट्रॉन के द्रव्यमान का लगभग 200 गुना है लेकिन प्रोटॉन के द्रव्यमान से कम है। 1935 में युकावा ने इलैक्ट्रॉन और प्रोटॉन के बीच के द्रव्यमान वाले एक नए कण के अस्तित्व की खोज की और बाद में इसे 'मेसॉन' का नाम दिया गया, जिसका ग्रीक भाषा में अर्थ है 'मध्यस्थ'।

1935 में जब वे ओसाका इम्पीरियल विश्वविद्यालय में व्याख्याता थे, युकावा ने अपनी उपलब्धियों को 'ऑन द इंटरएक्शन ऑफ एलीमेंट्री पार्टिकिल्स' (प्रासी. फिजि. मैथ. सोसा. जापान, खंड 17, पृ 48) नामक शोध पत्र में प्रस्तुत किया। बाद में उनका सिद्धांत नाभिकीय एवं उच्च ऊर्जा भौतिकी का महत्वपूर्ण भाग बन गया और कॉस्मिक किरण अनुसंधान में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। मूल कणों की खोज में उनके काम का विशेष प्रभाव पड़ा। उनके सिद्धांत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि न्यूक्लिआनों के बीच कणों के आदान-प्रदान में नाभिकीय बलों को पुनः खोजा जा सकता है।

युकावा द्वारा खोजे गए नए कणों की पहचान करने में चार वर्ष और लग गए। 1937 में अमेरिकी भौतिक विज्ञानी कार्ल डेविड एंडरसन ने एक और नए कण की खोज की जिसका द्रव्यमान इलैक्ट्रॉन और प्रोटॉन के बीच था और उसने उसे 'मैसोटॉन' कहा। बाद में उसने इस नाम को अमेरिकी भौतिकीविद रॉबर्ट एंड्रूज मिलिकान की सलाह पर 'मैसोट्रॉन' में बदल दिया। नए कण की खोज के प्रकाशन के बाद, भारतीय भौतिकीविद होमी जहांगीर भाभा ने *नेचर* पत्रिका में एक शोधपत्र भेजा जिसमें उन्होंने नए कण को 'मेसॉन' कहे जाने की इच्छा जाहिर की। उनका मत था कि मिसोट्रॉन में 'ट्र' फालतू था क्योंकि यह मध्य के लिए ग्रीक मूल *मिसो* से संबंधित नहीं था। लेकिन, न्यूट्रॉन और इलैक्ट्रॉन में 'ट्र' मूल *न्यूट्र* और *इलैक्ट्र* से संबंधित था। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि नए कण को 'मेसॉन' कहा जाए। भाभा ने आवेशित मेसॉन के संदर्भ में दो प्रोटॉनों के साथ-साथ दो न्यूट्रॉनों की पारस्परिक क्रिया का वर्णन किया। उन्होंने दिखाया कि एक धनात्मक या ऋणात्मक मेसॉन स्वतः ही क्रमशः एक पॉजीट्रॉन या इलेक्ट्रॉन, और एक न्यूट्रिनों में बदल सकता था।

ब्रितानी भौतिक विज्ञानी सीसिल फ्रेंक पॉवेल और उनके सहयोगियों ने 1947 में युकावा के मेसॉन की खोज की। उन्होंने बहुत ऊंचाई पर नाभिकीय पायसों में कॉस्मिक किरणें पड़ने दीं। p+ और p- मेसॉनों को 140 MeV/c^2 के द्रव्यमान के साथ खोजा गया। आवेशहीन पाइऑन p^0 की खोज बाद में हुई। युकावा के मेसॉनों को साधारण नाभिकीय प्रतिक्रियाओं में उत्पन्न नहीं किया जा सका लेकिन जब न्यूक्लिआनों की पारस्परिक क्रियाओं में काफी मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न हुई तो वे उत्पन्न हो गए। अब उन्हें एक बड़े साइक्लोट्रॉन में उत्पन्न किया जा सकता है। प्रायोगिक रूप से मापा गया मेसॉनों का आवेश और उनका जीवनकाल युकावा के पूर्वानुमान के ही समान होता है।

अपनी इस उपलब्धि के लिए युकावा को वर्ष 1949 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। नोबेल पुरस्कार पाने वाले वे पहले जापानी व्यक्ति थे। यह पुरस्कार उन्हें उस समय मिला जब जापान की प्रतिष्ठा निम्न स्तर पर थी। नोबेल पुरस्कार ने जापान के युवा वैज्ञानिकों को अपूर्व उत्साह प्रदान किया। युकावा और सिन-इटिरो टोमोनागा, जिन्हें 1965 में भौतिकी में नोबेल पुरस्कार मिला, जापान में सैद्धांतिक भौतिकी की प्रबल शाखा स्थापित करने के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे।

युकावा स्वयं को विशेष रूप से बचपन में एक अकेले, अंतर्मुखी और खामोश रहने वाला व्यक्ति बताते थे। उन्होंने शांति के लिए भी काम किया, विशेष रूप से पगवाश आंदोलन में। उन्होंने 1932 में सुमिको युकावा से विवाह किया और हारुमी और ताकाकी नाम के उनके दो पुत्र हुए।

अपने विशुद्ध वैज्ञानिक काम के अलावा उन्होंने सर्जनात्मकता से संबंधित और विज्ञान के इतिहास तथा दर्शन पर भी अनेक लेख भी लिखे। उनकी *इंट्रोडक्शन टू क्वांटम मेकेनिक्स* (1946) और *इंट्रोडक्शन टू द थ्योरी ऑफ एलिमेंट्री पार्टिकिल्स* (1948) सहित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई। दोनों पुस्तकें जापानी में लिखी गई थीं। उन्होंने *प्रोग्रेस ऑफ थ्योरेटिकल फिजिक्स* नामक शोध पत्रिका भी आरंभ की और 1946 तक इसके संपादक के रूप में काम किया।

8 सितंबर 1981 को क्योतो में युकावा की मृत्यु हो गई।

संदर्भ :

1. एन. केमेर, *बायोग्राफिकल मेमोयर्स ऑफ फैलोज ऑफ द रॉयल सोसाइटी,* 27 (1983), 661
2. वी. राधाकृष्णन, *मैटसाइं.* रिपोर्ट, 107 (1981) 38
3. एल एम ब्राउन, *फिजिक्स टुडे,* फर. 1982, पृ. 88
4. एच. युकावा, *मेसॉन थ्योरी इन इट्स डेवलपमेंट्स* (नोबेल लैक्चर, 1949)
5. http://nobelprize.org/physics/laureates/1949/yukawa-hideki

एस. राजशेखर
स्कूल ऑफ फिजिक्स, भारतीदासन विश्वविद्यालय, तिरूचिरापल्ली 620 024 तमिलनाडु, भारत
अनुवाद : विनीता सिंघल

फार्म IV (नियम 8 देखें)

मासिक पत्र 'ड्रीम 2047' के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के संबंध में विवरण :

प्रकाशन का स्थान	:	नई दिल्ली
प्रकाशन की अवधि	:	मासिक
प्रकाशक तथा मुद्रक का नाम	:	डा. सुबोध महंती (विज्ञान प्रसार के लिए)
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	विज्ञान प्रसार सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली - 110 016
संपादक का नाम	:	डॉ. विनय बी. काम्बले
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	विज्ञान प्रसार सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली - 110 016
उनके नाम व पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामित्व है	:	विज्ञान प्रसार सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली - 110 016

मैं, डॉ. सुबोध महंती, यह घोषणा करता हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य है।

डा. सुबोध महंती
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कोरोनरी बाइपास सर्जरी

संकरी धमनियों के चौड़े सेतु

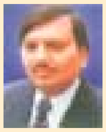

❑ डॉ. यतीश अग्रवाल
ई-मेल : dryatish@yahoo.com

कोरोनरी बाइपास सर्जरी हृदय रोग से ग्रस्त व्यक्ति को नया, स्वस्थ और बेहतर जीवन प्रदान करता है। सर्जरी के दौरान हृद् धमनियों के संकरे हुए हिस्सों में छाती या टांग की रुधिर वाहिकाहों को जोड़ा जाता है। ये नई वाहिकाएं फिर से हृदय में सुचारू रूप से रक्त पहुंचाती हैं। इनसे एंजाइना और हृदय के दौरे का खतरा कम करने में मदद मिलती है। ऐसा पहला ऑपरेशन 1967 में किया गया था जो अब नियमित रूप से किया जाता है। विश्व भर में लाखों हृदय रोगी इससे प्रतिवर्ष लाभांवित होते हैं।

किसे लाभ मिल सकता है

बाइपास सर्जरी का निर्णय सामान्यतः रोग लक्षणों की गंभीरता, हृद्धमनियों के जाल और निलय (वेंट्रिकिल) की क्रिया के अनुसार लिया जाता है। बाइपास सर्जरी के लिए 75 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति आदर्श रोगी है जिसे ऑपरेशन में अड़चन पैदा करने वाला कोई रोग न हो। उसे ऐसा कष्टप्रद और अशक्त करने वाला रोग भी न हो जिसे चिकित्सा से पूरी तरह नियंत्रित न किया जा सके या व्यक्ति के लिए चिकित्सा असहनीय बन गई हो, वह अधिक सक्रिय जीवन जीने का अभिलाषी हो और उसकी कई हृद्धमनियां गंभीर रूप से संकरी हो गई हों। ऐसे रोगियों में ऑपरेशन से पर्याप्त सुधार होने की संभावना रहती है।

बाइपास सर्जरी वैसे खतरे से खाली नहीं है। खतरा तब ज्यादा होता है जब हृदय के बांए निलय की कार्य प्रणाली में जोखिम हो (रुधिर प्रवाह अंश 40 प्रतिशत से कम), यदि आयु 75 वर्ष से अधिक हो, रोगी को मधुमेह की शिकायत हो या आपातकालीन सर्जनी करनी पड़े। बाइपास सर्जरी से जीवनकाल बढ़ता है या नहीं, इस बात में मतभेद है।

असल में अनेक अध्ययनों से पता चला है कि अगर रोग की गंभीर अवस्था है और रोगी के हृदय की बांई ओर की मुख्य धमनी बहुत संकरी हो चुकी है या दो अथवा तीन रक्त वाहिकाओं में यही रोग हो चुका हो और हृद्धमनी के बांए निचले भाग में काफी रुकावट हो चुकी हो, तो शायद बाइपास सर्जरी से जीवनकाल नहीं बढ़ाया जा सकता।

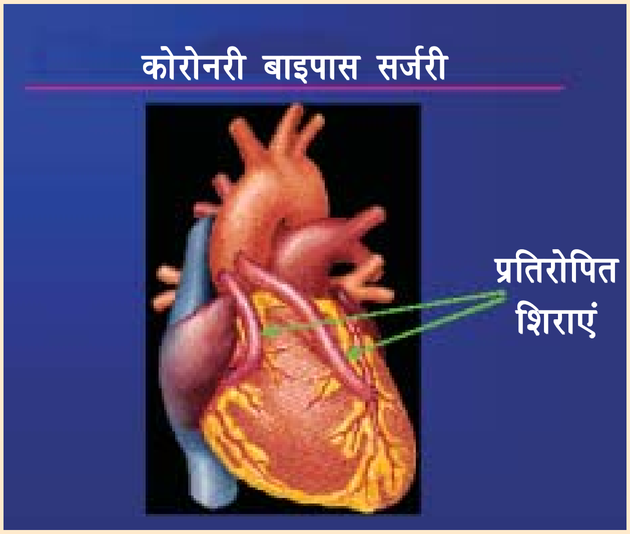

सर्जरी की तैयारी

छाती की किसी भी सर्जरी की तरह बाइपास सर्जरी में भी आपके फेफड़े स्वस्थ होने चाहिए। यदि ऑपरेशन जरूरी है और उसके पास पर्याप्त समय हो तो निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए :

धूम्रपान न करें : धूम्रपाल से दूर रहें बल्कि अपनी उपस्थिति में किसी को भी धूम्रपान न करने दें।

गहरी सांस लें : इसका तरीका बहुत आसान है। अधबैठी स्थिति में अपने हाथ पेट के ऊपरी भाग पर पसलियों के पास रखें। नाक से गहरी सांस लें और होंठों से सांस इस तरह छोड़ें मानो आप कोई मोमबत्ती बुझा रहे हों। ध्यान रहे कि आपके कंधे और छाती का ऊपरी भाग स्थिर रहे तथा हाथ जो पसलियों के कोणों पर स्थित हैं, सांस लेने के दौरान ऊपर उठें और छोड़ने के दौरान नीचे आएं। इससे पता लगता है कि आप अपने फेफड़ों का उपयोग पूरी तरह कर रहे हैं।

फेफड़ों में जमा बलगम बाहर निकालने का प्रयत्न करें : गहरी सांस लें, रोकें, तुरंत पेट को भीतर सिकोड़ें और सांस सामान्य रूप से छोड़ने की बजाय खांसते हुए छोड़ें। इसे यदि ठीक ढंग से किया जाए तो हाथों के बीच पेट की मांसपेशियों में सिकुड़न अनुभव होगी। यदि आप केवल गला खंखारने की कोशिश करेंगे, जैसा कुछ लोग गलती से करते हैं, तब इस क्रिया से लाभ नहीं मिल पाएगा।

चिकित्सा : मधुमेह ग्रस्त होने पर आपको इंसुलिन लेनी होगी। उच्च रक्तदाब ग्रस्त होने पर रक्तदाब को नियंत्रण में लाने वाला उपचार अपनाना होगा।

सर्जरी

सर्जरी की पूर्व संध्या को आपकी पूरी देह से बाल साफ किए जाएंगे और आपसे नहाने के लिए कहा जाएगा। व्यग्रता दूर करने के लिए आपको दवाएं दी जाएंगी और आधी रात के बाद कुछ भी खाने-पीने की मनाही होगी। सुबह अंग प्रक्षालन के बाद शामक (सीडेटिव) का इंजेक्शन दिया जाएगा जिससे आपको उनींदापन अनुभव होगा। स्ट्रेचर ट्रॉली पर आपको ऑपरेशन थियेटर तक ले जाया जाएगा।

आपरेशन कक्ष में पहुंचने पर एनेस्थेसिया विशेषज्ञ अंतःशिरा निशान बनाएगा जिससे आपको एनेस्थेसिया दिया जाएगा। आपको तुरंत बेहोशी की नींद आ जाएगी। इसके बाद ऑपरेशन में दो से चार घंटे का समय लगेगा।

सर्जन, हृदय तक दो तरह से पहुंच सकता है। छाती के बीच चीरा लगा कर तथा वक्ष-अस्थि (स्टेर्नम) के दो हिस्से करके अथवा वक्षस्थल की बाईं तरफ से। यदि ओपन हार्ट विधि अपनानी हो तो पहला तरीका चुना जाता है। दूसरा तरीका सामान्यतः बीटिंग हार्ट सर्जरी के लिए प्रयुक्त होता है।

ओपन हार्ट सर्जरी :

अधिकांश मामलों में हृदय का कार्य करने हेतु एक हृदय-फुक्फुस यानि हार्ट लंग मशीन का सहारा लिया जाता है। हृदय पर एक खास घोल डालने के बाद उसे रोक दिया जाता है। इससे सर्जन को नई रक्त वाहिकाएं प्रत्यारोपित करने में मदद मिलती है।

रुधिरवाही धमनियों के अवरुद्ध हिस्सों को खोलने के लिए चिकित्सक के पास दो विकल्प होते हैं : स्तन की भीतरी धमनी के रुधिर प्रवाह को उलटकर उसके द्वारा हृदय तक रक्त पहुंचाने का उपक्रम किया जाए अथवा रोगी की जांघ से ली गई शिरा को एक ओर महाधमनी और दूसरी ओर अवरुद्ध हृद्धमनी के बाधित भाग से परे प्रत्यारोपित किया जाए। इस तरह जितने अपेक्षित हों उतने प्रतिरोपण संभव हैं। इस विधि से हृदय तक समुचित रक्त पहुंचने लगता है और हृदय के रोगलक्षणों से निजात मिल जाती है।

ऑपरेशन का यह महत्वपूर्ण काम पूरा हो जाने के बाद हृदय और फेफड़ों को पुनः रक्त संचार हेतु सक्रिय किया जाता है। वक्ष-अस्थि के दोनों सिरे जोड़ दिए जाते हैं और ऊतक तथा छाती की त्वचा सिल दी जाती है।

बीटिंग हार्ट सर्जरी :

इस ऑपरेशन में दूसरा तरीका अपना कर सर्जन द्वारा हृदय के कार्यरत रहते हुए ही प्रत्यारोपण किया जाता है। इस प्रक्रिया को 'ऑफ-पंप' सर्जरी भी कहा जाता है। इसमें कम समय लगता है और प्रायः रक्त देने की जरूरत नहीं पड़ती।

ऑपरेशन के बाद

ऑपरेशन के बाद आपको रिकवरी रूम में ले जाया जाता है जहां डॉक्टरों की टीम, नर्स और अन्य प्रशिक्षित कार्यकर्ता सतत परिचर्या प्रदान करते हैं। वे रोगी की हालत पर लगातार नजर रखते हैं। इस गहन परिचर्या व्यवस्था में आपको 24 से 48 घंटे तक रहना होगा। एनेस्थेसिया और दवाओं का असर दूर होने पर आपको होश आ जाएगा हालांकि खुमारी बनी रहेगी। आप स्वयं को कई तारों, ट्यूबों और मशीनों से जुड़ा पाएंगे। सिरहाने रखा मॉनीटर लगातार आपका इलैक्ट्रोकॉर्डियोग्राम, हृदय गति, श्वास-प्रश्वास क्रिया और रक्त में ऑक्सीजन के स्तर की पड़ताल करता रहेगा। प्राणाधार पैरामीटरों में किसी भी बाधा के प्रति संवेदनशील होने के कारण यह मॉनीटर असामान्यता होने पर उसकी चेतावनी देने के लिए बीप-बीप की आवाज करने लगता है। धमनी में लगाए गए कैनुला द्वारा रक्तदाब पर निगरानी रखी जाती है। इसके द्वारा नमूने के लिए रक्त भी लिया जा सकता है। दूसरी कैन्यूला गर्दन की शिरा में लगाई जाती है जिससे शिराओं के दाब पर लगातार नज़र रखी जा सकती है।

आपकी नजर वक्ष की निकासी ट्यूबों पर भी पड़ेगी। वे छाती से खून मिले द्रवों को बाहर निकालती हैं और सिरहाने रखे वैक्यूम कंटेनर से जुड़ी होती हैं। सर्जरी के बाद इनकी 24 से 48 घंटे तक जरूरत होती है। एक ओर नली मूत्र का कैथेटर है जो मूत्राशय से मूत्र की निकासी में मदद करती है। इसे सर्जरी के दौरान मूत्राशय में लगाया जाता है। ऑपरेशन के आखिरी दौर में सर्जन दो या अधिक पेसमेकर तारों को हृदय में लगाता है। ये तार बाहर निकालकर वक्ष की बाहरी त्वचा पर टांके जाते हैं और इन्हें एक केबल द्वारा अस्थाई पेसमेकर बक्से से जोड़ दिया जाता है। कुछ समय के लिए लगे अतिरिक्त पेसमेकर का प्रयोग हृदय की गति और लय की अनियमितताओं की स्थिति में उन्हें नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है।

सांस लेने हेतु एक नलिका (इंडोट्रैकियल ट्यूब) श्वास नली में लगाई जाती है। इससे सांस लेने में मदद मिलती है और इसे एक रेस्परेटर से जोड़ा जाता है जो फेफड़ों में सांस भरता और छोड़ता है। जब व्यक्ति स्वयं सांस लेने में समर्थ हो जाता है तब इसे हटा दिया जाता है। इंडोट्रैकियल ट्यूब कुछ समय बाद लगभग 16 से 24 घंटे बाद हटाई जाती है। जब तक यह नली लगी रहती है बातचीत करना और खाना-पीना संभव नहीं हो पाता। इसे हटाने पर गला छिला हुआ महसूस हो सकता है और आवाज में खराश भी संभव हो सकती है। यह सब कुछ समय बाद स्वयं ठीक हो जाता है। फिर भी कुछ बेचैनी अनुभव होती है। व्यक्ति विभ्रम का शिकार हो सकता है और अजीब से सपने भी आ सकते हैं। ये सभी प्रभाव अस्थाई हैं और इनसे चिंतित होने की जरूरत नहीं है।

ऑक्सीजन मास्क अभी भी लगा रहेगा। शिराओं द्वारा दिए गए द्रवों से आपके पोषण की जरूरत पूरी होती रहेगी। आपको अगले कुछ घंटों के लिए गहन परिचर्या एकक यानि आई सी यू (इंटेसिव केयर यूनिट) में ले जाया जाएगा और यदि सब कुछ ठीक-ठाक रहा तो आपको पोस्ट ऑपरेटिव रूम में भेज दिया जाएगा। अधिकांश नलियां निकाल दी जाएंगी। आपको चलने-फिरने, उठने-बैठने की इजाजत मिल जाएगी। इस दौरान कोशिश करें कि गहरी सांस लेने का अभ्यास चालू रहे। इस समय आप भावुक हो सकते हैं - आपको डिप्रेशन, गुस्सा या कुंठा का अनुभव हो सकता है। ये स्थितियां भी कुछ ही समय के लिए हैं और इनसे व्यक्ति को उबरने में मदद मिलती है। सातवें दिन आप घर जाने के लिए तैयार हैं।

सामान्य दिनचर्या की शुरुआत

आप शीघ्र ही सामान्य दिनचर्या की शुरुआत कर सकते हैं। स्वास्थ्य लाभ के दौरान व्यायाम और आराम दोनों में संयम अच्छा रहेगा। शुरुआती दौर में सुबह उठना, नहाना, तैयार होना भी थकावट वाले काम लग सकते हैं पर जैसे-जैसे दिन गुजरेंगे सब कुछ सामान्य होने लगेगा।

आपको चीरे की जगह का खास ध्यान रखना है। उसे साफ रखें। साबुन और पानी से सावधानी से धोएं। यदि किसी प्रकार की लाली, सूजन या द्रव निकलता हुए दिखे तो तुरंत सर्जन को सूचित करें। टांग के चीरे को ठीक होने में छाती के चीरे से अधिक समय लगता है। आपको टखने में हल्की सूजन दिखाई दे सकती है। टांगें न मोड़ें, बैठते समय टांगों को सीधा रखें और सहारा देकर टिकाएं। सूजन दूर करने के लिए पैदल चलना भी अच्छा तरीका है।

आप धीरे-धीरे ऐसे सरल काम करना आरंभ कर सकते हैं जिनसे थकान न हो। जैसे अपने जीवन साथी की खाने की मेज लगाने और साफ करने में मदद करना या पौधों को पानी देना। फिलहाल 5 किलो. से अधिक वजन वाला सामान उठाना, खिसकाना या घर की धूल साफ करना कुछ सप्ताह तक करने से बचें जब तक वक्ष अस्थि के घाव न भर जाएं।

आपको अस्पताल में चिकित्सक से दुबारा मुलाकात के लिए सामान्यता अस्पताल से छुट्टी मिलने के एक या दो सप्ताह बाद बुलाया जाएगा। अब आप हृदय विशेषज्ञ के निरीक्षण में रहेंगे जो आपकी प्रगति की जांच करेगा, कुछ टेस्ट करवाने के लिए आपसे कहेगा और शारीरिक परिश्रम, दवाओं तथा जीवनचर्या संबंधी सलाह देगा।

पूरे आठ घंटे की अच्छी नींद लें। दोपहर में भी 15 मिनट की हल्की झपकी बहुत अच्छी रहेगी। भोजन के लिए बाहर जाने, सिनेमा देखने या दोस्तों और रिश्तेदारों से मेल-मुलाकात का सिलसिला शुरू किया जा सकता है। इस समय सामान्य यौन क्रिया भी आरंभ की जा सकती है बशर्ते आप बिना थके और बगैर सांस फूले तेजी से तीन ब्लॉक की दूरी चल सकें। आप शीघ्र ही अपना कार्यभार भी संभाल सकते हैं।

निष्कर्ष

हृदय का ऑपरेशन काफी हद तक सुरक्षित है। ऑपरेशन में ऐसे रोगियों की मृत्यु दर एक प्रतिशत से भी कम रहती है जिन्हें किसी प्रकार की कोई दूसरी गंभीर बीमारी न रही हो, जिनका बांया निलय ठीक-ठाक काम कर रहा हो और ऑपरेशन अनुभवी सर्जनों के दल द्वारा किया गया हो। इस तरह धमनियां बदलने से 90 प्रतिशत रोगियों में एंजाइना का कष्ट या तो पूरी तरह दूर हो जाता है या फिर काफी हद तक कम हो जाता है। तीन वर्षों के बीच यह कष्ट लगभग एक चौथाई लोगों में फिर उभर आता है पर बहुत कम स्थितियों में गंभीर रूप ग्रहण करता है। नतीजे तब और भी अच्छे निकलते हैं जब हृद्धमनी के जोखिम कारकों के प्रति सजग रहकर सावधानी बरती जाती है। स्वस्थ जीवन शैली अपनाकर आप हृदय को मिले इस नए जीवनरक्षक उपहार का पूरा लाभ उठा सकते हैं।

अनुवाद : कुंकुम जोशी

भूकंप टिप - 9

भूकंप को सहने की अच्छी क्षमता के लिए इमारतों को तन्य कैसे बनाया जाए

निर्माण सामग्री

भारत में अधिकतर गैर-शहरी इमारतें चिनाई की तकनीक से बनाई जाती हैं। मैदानी इलाकों में चिनाई, अधिकतर भट्टियों में तपाई गई चिकनी मिट्टी (क्ले) की ईंटों और सीमेंट चूनालेप (मोर्टार) से बनाई जाती हैं। हालांकि पर्वतीय क्षेत्रों में, कीचड़ चूनालेप के साथ पत्थरों की चिनाई ही अधिक प्रचलन में है। लेकिन, हाल ही में इसकी जगह सीमेंट चूनालेप ने ले ली है। चिनाईयुक्त संरचना ऐसे भार को उठाने में सक्षम होती है जो संपीडन (यानी कि परस्पर दबाव) उत्पन्न करते हैं, लेकिन मुश्किल से ही ऐसे भार को उठा पाने में सक्षम होती है जो तनाव (यानी कि खिंचाव) उत्पन्न करते हैं (चित्र 1)।

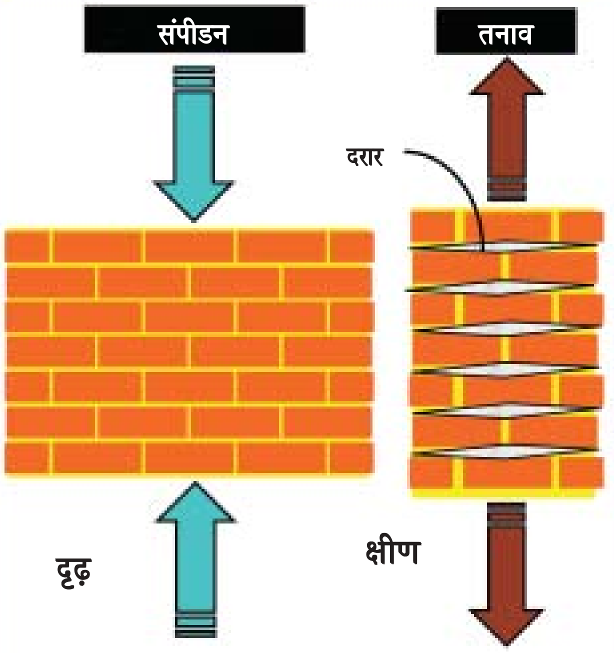

चित्र 1 : चिनाईयुक्त संरचना संपीडन में मजबूत किंतु तनाव में क्षीण होती है

कंक्रीट एक ऐसा पदार्थ है जिसे भवन निर्माण में, खासतौर से पिछले चार दशकों के दौरान काफी इस्तेमाल में लाया गया है। सीमेंट कंक्रीट उचित अनुपात में मिलाए गए पीसे हुए पत्थर के टुकड़ों (जिन्हें एग्रीगेट या पुंज कहते हैं), रेत, सीमेंट और पानी से बना होता है। संपीडक भारों को उठाने में कंक्रीट, चिनाई की तुलना में कहीं अधिक मजबूत होता है, लेकिन तनाव की दशा में यह क्षीण पड़ जाता है। कंक्रीट के गुणधर्म उसके निर्माण में प्रयुक्त होने वाले पानी की मात्रा पर काफी हद तक निर्भर करते हैं; पानी की बहुत अधिक या बहुत कम मात्रा कंक्रीट की गुणवत्ता पर बुरा असर डाल सकती है। सामान्यतया, चिनाई और कंक्रीट दोनों भंगुर होते हैं और अचानक ही नाकाम या विफल हो जाते हैं।

इस्पात का इस्तेमाल कंक्रीट और चिनाई वाली इमारतों में प्रबलन दंडों, जिनका व्यास 06 मिलीमीटर से 40 मिलीमीटर के परिसर में होता है, के रूप में किया जाता है। प्रबलक इस्पात, तनन और संपीडक दोनों ही किस्म के भारों को उठा पाने में सक्षम होता है। साथ ही, इस्पात एक तन्य पदार्थ भी है। तन्यता के इस महत्वपूर्ण गुणधर्म के कारण टूटने से पहले इस्पाती दंड बड़े विस्तार को झेल पाते हैं।

इमारतों को बनाने में कंक्रीट का प्रयोग इस्पात प्रबलन दंडों के साथ किया जाता है। इस सम्मिश्र पदार्थ को प्रबलित सीमेंट कंक्रीट या सिर्फ प्रबलित कंक्रीट (आर सी) की संज्ञा दी जाती है। किसी भी हिस्से या मेंबर में इस्पात की मात्रा और स्थिति कुछ इस तरह होनी चाहिए कि उसका विफलन, तनाव में इस्पात के अपनी सामर्थ्य की सीमा तक पहुंचने से पहले संपीडन में कंक्रीट अपने सामर्थ्य की सीमा तक पहुंच पाए। इस तरह के विफलन को तन्य विफलन कहते हैं और इसे उस विफलन की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है जहां संपीडन में कंक्रीट में विफलन उत्पन्न होता है। इसलिए, सामान्य सोच के विपरीत आर सी इमारतों में बहुत अधिक इस्पात का इस्तेमाल नुकसानदायक भी हो सकता है।

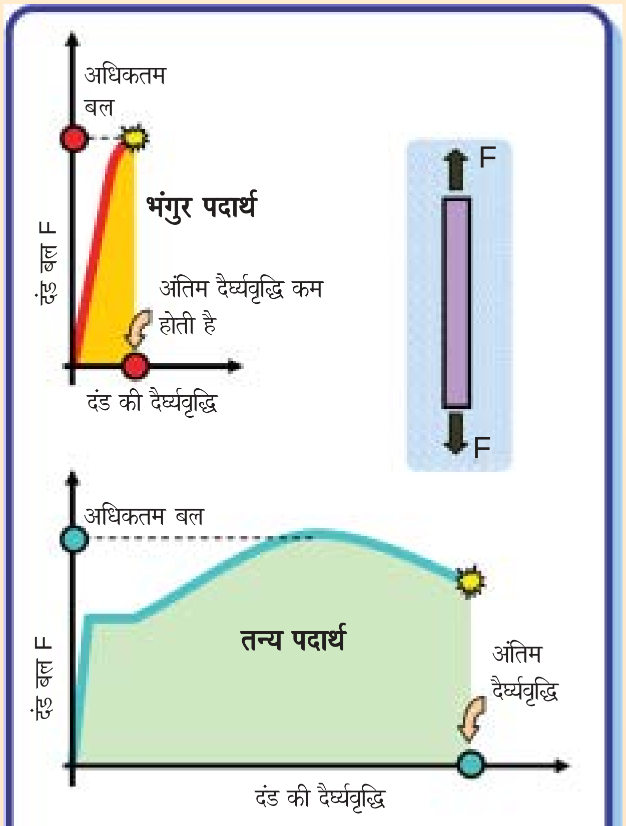

चित्र 2 : पदार्थों पर तनाव परीक्षण - तन्य बनाम भंगुर पदार्थ

क्षमता डिज़ायन की अवधारणा

समान लंबाई तथा अनुपरिच्छेदित क्षेत्र वाले दो दंडों को लीजिए। इनमें से एक तन्य पदार्थ से बना है और दूसरा किसी भंगुर पदार्थ से। अब इन दोनों दंडों को तब तक खींचिए जब तक कि वे टूट न जाएं! आप यह देखेंगे कि तन्य दंड की दैर्घ्यवृद्धि (इलोंगेशन) टूटने से पहले काफी अधिक मात्रा में होती है जबकि भंगुर दंड अपने अधिकतम सामर्थ्य तक पहुंचते ही तुलनात्मक रूप से बहुत कम दैर्घ्यवृद्धि के साथ विस्तारित होकर अचानक टूट जाता है (चित्र 2)। भवन निर्माण में इस्तेमाल होने वाले पदार्थों में इस्पात तन्य होता है जबकि चिनाई तथा कंक्रीट भंगुर होते हैं।

आइए, अब *भंगुर* तथा *तन्य* पदार्थों से निर्मित कड़ियों वाली एक जंजीर (चेन) बनाते हैं (चित्र 3)। इनमें से प्रत्येक कड़ी चित्र 2 में प्रदर्शित दंडों की तरह ही असफल होगी। अब श्रृंखला के दोनों सिरों की अंतिम कड़ियों को पकड़कर उन पर बल 'F' डालें। आरोपित करें। चूंकि प्रत्येक कड़ी में से एक समान बल 'F' को स्थानांतरित किया जा रहा है, प्रत्येक कड़ी में बल एक समान यानी F ही है। अधिक से अधिक बल आरोपित करने के साथ-साथ जंजीर की सबसे *कमजोर कड़ी* टूटने पर अंततः श्रृंखला टूट जाएगी। यदि तन्य कड़ी ही सबसे

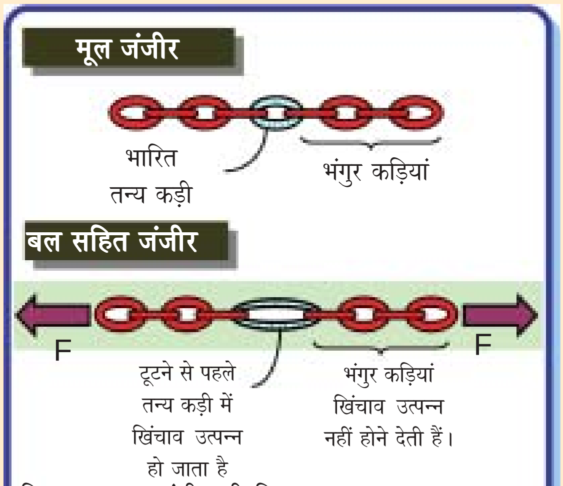

चित्र 3 : तन्य जंजीर की डिज़ायन

कमजोर है (यानी उसकी भार वहन करने की क्षकता कम है) तो वह जंजीर एक बड़ा अंतिम दीर्घीकरण प्रदर्शित करेगी। इसके विपरीत, यदि भंगुर कड़ी ही कमजोर कड़ी है तो वह जंजीर अचानक ही टूट जाएगी और एक सूक्ष्म अंतिम दीर्घीकरण का प्रदर्शन करेगी। अतः यदि हम इस तरह की एक *तन्य* जंजीर चाहते हैं तो हमें तन्य कड़ी को सबसे अधिक *कमजोर* कड़ी बनाना पड़ेगा।

इमारतों की भूकंपरोधी डिज़ायन

इमारतों की डिज़ायन, तन्य जंजीर की तरह होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, एक आम शहरी आवासीय अपार्टमेंट जिसकी बहु-मंजिली इमारत प्रबलित कंक्रीट की बनी होती है, के निर्माण ही को लें। उसमें बीम तथा कॉलम नामक क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर हिस्से (मेंबर) होते हैं। उसके फर्श के स्तरों पर जनित भूकंपी जड़त्व बल विभिन्न बीमों और कॉलमों के जरिए भूमि की ओर स्थानांतरित कर दिए जाते हैं। इमारत के सही घटकों को तन्य बनाए जाने की आवश्यकता होती है। एक कॉलम की असफलता पूरी इमारत के स्थायित्व को प्रभावित कर सकती है, लेकिन एक बीम की असफलता से केवल स्थानीय प्रभाव उत्पन्न होता है। अतः बीमों को कॉलमों की अपेक्षा तन्य कमजोर कड़ियों की तरह बनाया जाना बेहतर है। प्रबलित कंक्रीट इमारतों की डिज़ायन करने वाली इस विधि को *मजबूत कॉलम कमजोर बीम* डिज़ायन विधि (चित्र 4) कहा जाता है।

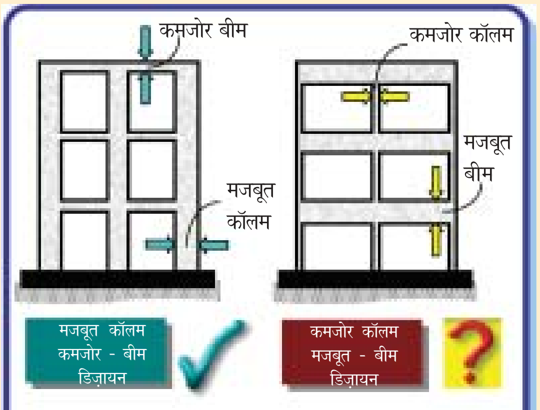

चित्र 4 : प्रबलित कंक्रीट इमारत की डिज़ायन : बीम न कि कॉलम सबसे कमजोर कड़ियां होनीं चाहिए। मेंबरों को उचित आकार देकर और उनमें सही परिमाण में स्टील प्रबलीकरण करके ऐसा किया जा सकता है

सामान्य डिज़ायन कोडों (अ-भूकंपी प्रभावों के विरुद्ध डिज़ायन के लिए) का प्रयोग करके, डिज़ायन निर्माता तन्य संरचना का निर्माण करने में सफल नहीं हो सकते हैं। संरचना की तन्यता में सुधार लाए जाने में डिज़ायन निर्माता की मदद के लिए विशेष डिज़ायन प्रावधानों की आवश्यकता होती है। ऐसे प्रावधानों को आमतौर पर एक विशेष भूकंपी डिज़ायन कोड, उदाहरण के लिए प्रबलित कंक्रीट (आर सी) संरचनाओं के लिए, आई एस : 13920-1993 के रूप में एक साथ रखा जाता है। ये कोड यह भी सुनिश्चित करते हैं कि जिन मेंबरों में क्षति की संभावना है उनमें पर्याप्त तन्यता बनाई जाए।

निर्माण में गुणवत्ता नियंत्रण

यदि भंगुर कड़ियों की मजबूती उनके न्यूनतम आश्वस्त मानों से नीचे गिर जाए तो इमारतों की भूकंपरोधी डिज़ायन क्षमता अवधारणा असफल हो जाएगी। चिनाई तथा कंक्रीट जैसी भंगुर निर्माण सामग्री की मजबूती, गुणवत्ता, कार्यकुशलता, *पर्यवेक्षण* और निर्माण विधियों के प्रति काफी संवेदनशील होती है। इसी तरह यह सुनिश्चित करने के लिए कि जिन अवयवों के तन्य होने की आशा की जा रही है, उन्हें पर्याप्त मात्रा में तन्यता प्रदान की जाए। उनके निर्माण में विशेष देख-देख की आवश्यकता होती है। भूकंपरोधी इमारत बनाने के लिए निर्माण सामग्री और निर्माण विधियों के निर्धारित मानकों का कठोर पालन बहुत आवश्यक है (स्थल पर ही या उससे बाह्य स्थिति)। अच्छी मानक प्रयोगशालाओं में निर्माण पदार्थों की नियमित जांच, व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों में कर्मियों का समय-समय पर प्रशिक्षण और तकनीकी कार्य का स्थल पर ही मूल्यांकन अच्छी गुणवत्ता नियंत्रण के तत्व हैं।

संदर्भ सामग्री

1. पौले, टी., प्रीस्टले, एम.जे.एन., (1992), *सीस्मिक डिज़ाइन ऑफ रीइंफोर्स्ड कंक्रीट बिल्डिंग्स एंड मेसोनरी*, जॉन वाइली, अमेरिका।
2. मेज़ोलनी, एफ.एम., एवं पिलुसो, वी., (1996), *थ्योरी एंड डिजाइन ऑफ सीस्मिक-रेसिसटेंट स्टील फ्रेम्स*, ई एंड एफ एन स्पॉन, यू के।

साभार :

लेखक : सी.व्ही.आर. मूर्ति, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर, कानपुर
प्रायोजक : भवन निर्माण सामग्री एवं प्रौद्योगिकी संवर्धन परिषद, नई दिल्ली
अनुवादक : आभास मुखर्जी
अनुवाद समीक्षक : स्निगुधा ए. सान्याल

आकाश दर्शन मार्च 2007

पूर्ण चांद (पूर्णिमा)

04 मार्च

नया चांद (अमावस्या)

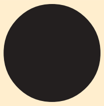

19 मार्च

चांद - अंतिम क्वार्टर

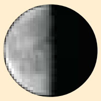

12 मार्च

चांद -पहला क्वार्टर

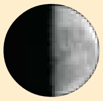

25 मार्च

उत्तर

पूर्व

पश्चिम

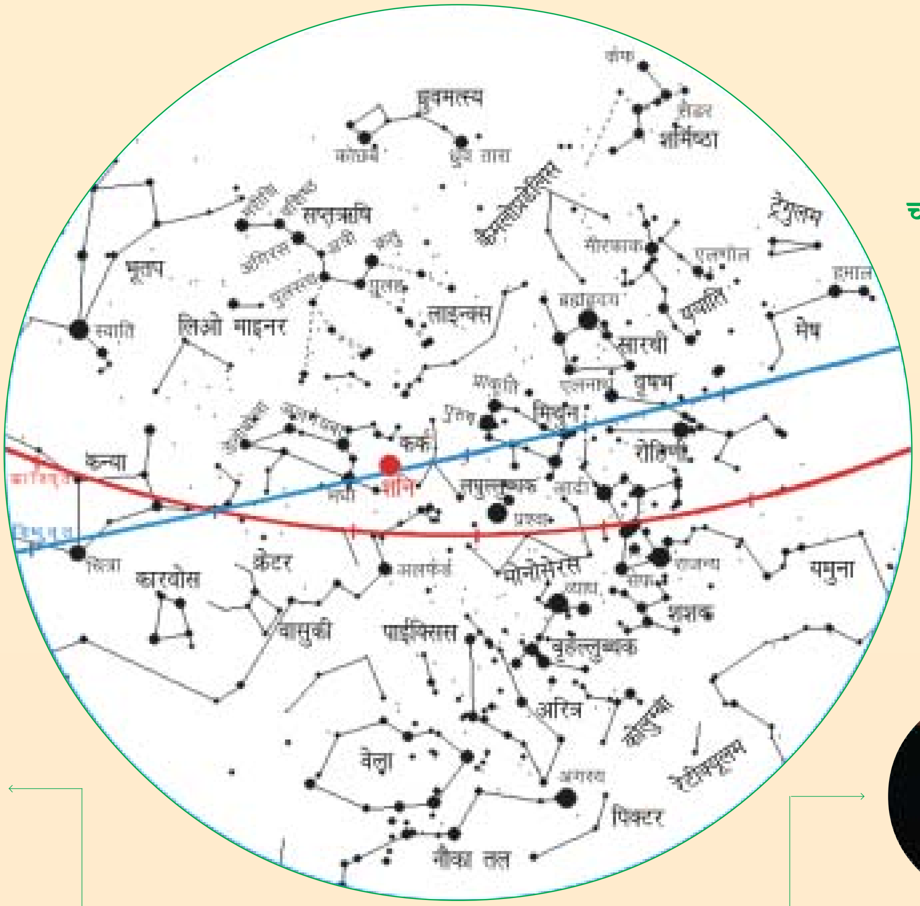

दक्षिण

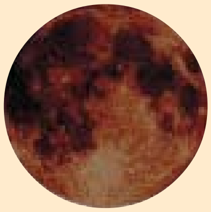

03 मार्च

पूर्ण चंद्र ग्रहण

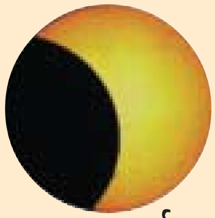

19 मार्च

आंशिक सूर्य ग्रहण

विशेष घटना

आकाश की यह स्थिति नागपुर (21.09° उत्तर, 79.09° पूर्व) के दर्शकों के लिए बताई गई है। इसमें चमकीले तारामंडलों और ग्रहों को दिखाया गया है। नागपुर के दक्षिण में रहने वाले दर्शकों को दक्षिणी तारामंडल दक्षिणी आकाश में काफी ऊंचाई पर जबकि उत्तरी तारामंडल उत्तरी आकाश के क्षितिज के समानांतर दिखाई देंगे। नागपुर के उत्तर में रहने वाले दर्शकों को उत्तरी तारामंडल उत्तरी आकाश में काफी ऊंचाई पर जबकि दक्षिणी तारामंडल दक्षिणी आकाश के क्षैतिज के समानांतर दिखाई देंगे। इस मानचित्र को 1 मार्च रात दस बजे और 15 मार्च रात्रि 9 बजे तथा 31 मार्च को रात्रि 8 बजे इस्तेमाल किया जा सकता है।

रात में आकाश को निहारने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखें :

(1) शहर की रोशिनियां/गली की रोशिनियों से दूर का कोई स्थान चुनें; (2) आकाश के चित्र को सिर के ऊपर ध्रुव तारे की दिशा यानी 'उत्तर' में पकड़कर रखें; (3) चित्र को पढ़ने के लिए पेंसिल टॉर्च का उपयोग करें; (4) चित्र में दिखाए गए तारामंडलों को एक-एक कर पहचानें।

ग्रह स्थिति :

शनि : क्षितिज के निकट सिंह राशि में।

प्रमुख तारामंडल : नीचे प्रमुख तारामंडलों का उल्लेख किया गया है। उनमें सबसे अधिक चमकदार तारे का नाम कोष्टक में दिया गया है। इटैलिक अक्षरों में उनके भारतीय नाम दिए गए हैं।

पूर्वी आकाश	:	बूतीज (आर्क्टुरस)/ *भूताप (स्वाति)*, कार्वोस, कॉमा बेरेनिसेज़, क्रेटर, हाइड्रा, (एल्फेर्ड)/ *वासुकि*, विर्गो (स्पाइस)/*कन्या राशि (चित्रा)*
पश्चिमी आकाश	:	एरीज (हमाल)/मेष राशि, लेपस/शशक, पर्सेयस (अलगोल)/ययाति, टॉरस (अल्डेब्रान)/वृषभ राशि (रोहिणी), ट्राइएंगुलम
दक्षिणी आकाश	:	एंटिला, केलम, केनिस मेजर (सिरियस)/ब्रह्मलुब्धक (व्याध), केरिना (कैनोपस)/नौकातल (अगत्स्य), कोलंबा, पुपिस, पिक्सिस
उत्तरी आकाश	:	कैम्लोपेर्डालिस, कैसियोपिया (शेडर)/शर्मिष्ठा, अर्सा मेजर (मेरक, धुबे)/ *सप्तर्षि (पुलह/क्रतु)*, अर्सा माइनर (पोलेरिस)/ *ध्रुवमत्स्य (ध्रुवतारा)*
शिरोबिंदु	:	ऑरिगा (कैपिला)/ *सारथी (ब्रह्म हृदय)*, कैंसर *(कर्क राशि)*, केनिस माइनर (प्रोसायोन)/ *लघु लुब्धक*, जैमिनी (कैस्टर, पोलस्क)/ *मिथुन राशि*, लियो (रेगुलस)/ *सिंह राशि (मघा)*, लिंक्स, मोनोसेरस, ओरायन (राइगेल, बेटलग्यूज)/मृग (राजन्य, आर्द्रा)

अरविन्द सी. रानडे
ई-मेल : rac@vigyanprasar.gov.in

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

भारतीय अंतरिक्ष कैप्सूल वापस आया

भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों को पुनरउपयोगी अंतरिक्ष यान के विकास के अपने प्रयासों में कैप्सूल, एसआरई-1 जिसे पहले ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी-डी7) द्वारा प्रक्षेपित किया गया था, की सुरक्षित वापसी के साथ एक बड़ी सफलता मिली है। प्रक्षेपण के बाद 500 कि.ग्रा. के कैप्सूल को 637 कि.मी. की ऊंचाई पर एक गोलाकार ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किया गया था। यह 10 जनवरी 2007 को श्रीहरिकोटा, आंध्र प्रदेश स्थित सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र से पीएसएलवी-डी7 द्वारा प्रक्षेपित चार पेलोडों में से एक था। पृथ्वी की कक्षा से 12 दिनों बाद लौटने वाले कैप्सूल ने वायुमंडल में प्रवेश किया और बंगाल की खाड़ी में उतर गया जहां से इसे कोस्ट गार्ड की एक वैसिल द्वारा पकड़ कर वापस श्रीहरिकोटा लाया गया।

स्पेस कैप्सूल रिकवरी एक्सपेरिमेंट (एसआरई-1) का उद्देश्य सूक्ष्म गुरुत्व अवस्थाओं में प्रयोग करने के लिए कक्षीय प्लेटफार्म की प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन करना था। इसका उद्देश्य कक्षीय अंतरिक्षयान की सफल वापसी के लिए

एसआरई-1

आवश्यक पुनरउपयोगी ताप सुरक्षा पद्धति, नेवीगेशन, मार्गदर्शन और नियंत्रण, संचार ब्लैकआउट के प्रबंधन, अवत्वरण और प्लवन तंत्र, पुनर्प्राप्ति क्रियाओं आदि का परीक्षण करना था। लेकिन, वर्तमान सफलता भविष्य के लक्ष्यों के प्रति केवल एक कदम मात्र है। पुनरउपयोगी अंतरिक्ष यान और समानव सहित मिशनों के अंतरिक्षयात्रियों के लिए अन्य अनेक प्रौद्योगिकियों की भी जरूरत होगी जैसे नए रॉकेट इंजन, लाइफ-सपोर्ट और सुरक्षा तंत्र आदि।

स्रोत : आएसआरओ

40 वर्षों में सबसे चमकदार धूमकेतु

धूमकेतु बाहरी सौर मंडल से आए हुए यात्री हैं जो सूरज के निकट आते ही एक दर्शनीय पूंछ विकसित कर लेते हैं। निश्चत अवधि में आने वाले धूमकेतुओं के अलावा अन्य धूमकेतुओं का आविर्भाव के बारे में पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है। इनमें से अधिकांश धूमकेतु बिना किसी पूर्व संकेत के प्रकट होते हैं। पृथ्वी से देखने पर धूमकेतु धुंधले दिखते हैं, और आमतौर से पूंछ ही स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कुछ धूमकेतुओं में पूंछ आसमान में काफी बड़ा वक्र बनाती है। कुछ धुंधले धूमकेतुओं में पूंछ छोटी होती है या होती ही नहीं है। धूमकेतु का सिर या कोमा प्रकाश के गोले जैसा दिखता है जिससे एक या कई पूंछें निकलती हैं। कोमा के अंदर एक केंद्रक होता है। उसी से पूंछ और कोमा बनाने वाला पदार्थ निकलता है।

धूमकेतु मैकनॉट

हाल के वर्षों में जनवरी 2007 में सबसे चमकदार धूमकेतु दिखाई दिया। 1996 में धूमकेतु हेल-बाप्प के जबरदस्त शो के एक दशक से भी अधिक समय बाद खगोल विज्ञानियों और आम लोगों को ऐसा चमकदार धूमकेतु देखने का अवसर मिला।अपने ऑस्ट्रेलियाई खोजकर्ता राबर्ट एच. मैकनॉट के नाम पर नामित यह नया धूमकेतु निश्चित अवधि में नहीं आता है। हार्वर्ड-स्मिथसोनियन सेंटर फॉर एस्ट्रोफिजिक्स के इंटरनेशनल कॉमेट क्वार्टरली के अनुसार यह पिछले 40 वर्षों के दौरान 1965 में देखे गए धूमकेतु इकेया-सेकी के बाद सबसे चमकदार धूमकेतु है। हालांकि मैकनॉट ने 7 अगस्त 2006 को इसकी खोज कर ली थी, लेकिन इसे जनवरी 2007 के आरंभ में ही कोरी आंखों से देखा जा सका। 12 जनवरी को उपसौर (पेरिहेलियॉन) के बाद 13 जनवरी को यह सबसे अधिक चमकदार हो गया और दिन की तेज रोशनी में भी देखना संभव हो सका। सूर्य के निकट कक्षा में होने के कारण धूमकेतु मैकनॉट को अधिकतर सांध्य प्रकाश में देखा जा सका। उपसौर के बाद धूमकेतु को केवल दक्षिणी गोलार्ध से ही देखा जा सका।

स्रोतः www.spaceweather.com

जी एम मुर्गियों से औषधि

अब अंडे जीवन रक्षक औषधियों का स्रोत बन गए हैं। एडिनबरा, स्कॉटलैंड में रोजलिन इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने कैंसर से लड़ने वाली औषधियां बनाने के लिए, आवश्यक प्रोटीन युक्त अंडे देने में सक्षम, आनुवंशिक रूप से रूपांतरित (जी एम) मुर्गियां विकसित की हैं। हेलेन सैंग और उनके साथियों ने लेंटिवाइरस

नामक विषाणुओं के एक वंश का प्रयोग किया जिनकी इंकुबेशन अवधि काफी लंबी है। इनका उपयोग पोषक कोशिका के डीएनए में काफी मात्रा में आनुवंशिक सूचना पहुंचाने के लिए किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने नवनिषेचित मुर्गी के भ्रूणों में जीन पहुंचाने के लिए इन विषाणुओं का उपयोग किया। उनमें डाली गई जीनों ने प्रोटीन ओवलब्युमिन के बजाय अनेक औषधियों के उत्पादन को प्रेरित किया। आमतौर से अंडे की सफेदी का लगभग 54 प्रतिशत तक ओवलब्युमिन प्रोटीन होता है। आनुवंशिक रूप से रूपांतरित भ्रूणों से जन्मे जीएम चूज़ों की नई जीन के लिए जांच की गई। नई मुर्गियां पैदा करने के लिए नई जीन युक्त मुर्गियों का सामान्य मुर्गियों के साथ प्रजनन कराया गया जिनमें नई जीन आ गई और उसने अंडों की सफेदी में औषधियां बनाई।

भ्रूण में डाली गई जीन के कारण जी एम मुर्गियों के नए झुंड ने या तो मिलेनोमा (एक प्रकार का त्वचा कैंसर) के उपचार में काम आने वाली मोनोक्लोनल एंटीबॉडी - miR24 या मल्टीपिल स्क्लिरॉसिस (केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का एक रोग) के उपचार में प्रयोग की जाने वाली एक प्रतिरक्षी प्रोटीन - इंटरफेरॉन b-1a उत्पन्न की। अंडे की प्रति मिलीलीटर सफेदी से लगभग 15 से 50 माइक्रोग्राम औषधि प्रोटीन तैयार की और औषधियों के रूप में निष्कर्षित और शोधित की गई।

शोधकर्ताओं के अनुसार, जी एम मुर्गियों के अंडे, इससे पहले तक खोजे गए अन्य आनुवंशिक रूप से रूपांतरित उत्पादों, जैसे बकरी का दूध, की अपेक्षा जल्दी और सस्ती औषधियां पाने का सरल रास्ता है। इसके अलावा, मुर्गी पालना और अंडे उत्पादित करना सरल और सस्ता भी है। रूपांतरित मुर्गियों की पांच पीढ़ियों के जन्म के बाद भी शोधकर्ताओं ने कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं देखा गया।

स्रोतः प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज (ऑन लाइन संस्करण), 16 जनवरी 2007

आवेशहीन अणुओं को त्वरित करने के लिए सिंक्रोट्रॉन

बर्लिन में मैक्स प्लैंक सोसाइटी के फ्रिट्ज हेबर संस्थान में जर्मन भौतिक विज्ञानियों ने एक सिंक्रोट्रॉन विकसित किया है जो आवेशित कणों के अलावा आवेशहीन कणों को त्वरित (एक्सीलरेट) कर सकता है। इस युक्ति ने परम शून्य के निकट तापमानों पर आवेशहीन अणुओं के टकराने की संभावनाओं को जन्म दिया है। सिंक्रोट्रॉन विशाल गोलाकार युक्तियां होती हैं जिनमें आवेशित कण, विद्युत और चुंबकीय क्षेत्रों के संयोजन का प्रयोग कर एक छल्ले के चारों ओर प्रकाश की गति से घूमते हैं। पहले आवेशित कण सिंक्रोट्रॉन 1940 के दशक में बनाए गए। तभी से भौतिक विज्ञानी एक ऐसा सिंक्रोट्रॉन बनाने पर विचार कर रहे थे जो आवेशहीन कणों को त्वरित कर सके। सिद्धांततः, कुछ आवेशहीन अणु, जैसे कि अमोनिया के अणु, लघु विद्युत डाइपोल की तरह काम करते हैं जो वृहद वैद्युत क्षेत्र का प्रयोग कर उच्च गति से चलने वाले ऐसे सिंक्रोट्रॉन में त्वरण के लिए सहज अनुगामी होने चाहिए। दुर्भाग्य से, ऐसा करने वाली प्रौद्योगिकी उपलब्ध नहीं थी, इसलिए इस विचार पर आगे काम नहीं किया गया।

फ्रिट्ज-हेबर संस्थान के गेरार्ड मीजर और उनके साथियों ने अब इन कठिनाइयों पर विजय पा ली है और एक आवेशहीन कण सिंक्रोट्रान बनाया है। मात्र 81 से.मी. परिधि वाली उनकी युक्ति, 100 मीटर प्रति सेकेंड की गति से, 30 मीटर से अधिक की उड़ान दूरियों तक अमोनिया जैसे ध्रुवीय कणों के 3 मि. मी. पैकेटों को परिसीमित करने में सक्षम है। टीम इस युक्ति को 0.5 डिग्री मिलीकेल्विन के अत्यंत निम्न तापमान पर चला रही है, जिस बिंदु पर अणुओं में ऊर्जा इतनी कम होती है कि वे तरंग की तरह व्यवहार करते हैं। अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार, युक्ति अणुओं के बीच संघट्टनों, उनके भौतिक गुणों और रासायनिक प्रतिक्रियाओं के अध्ययन के लिए नई राह खोल सकती है। इससे पहले तक कभी यह पता नहीं लगा था कि इलेक्ट्रान संभावित बाधाओं को पार करके नए अणु बना सकते हैं।

स्रोतः *नेचर फिजिक्स*, फरवरी 2007 (एडवांस ऑनलाइन संस्करण)

(पृष्ठ 2 का शेष)

पोलियो : पीछे हटता हुआ लक्ष्य

प्रदेश और बिहार में अतिसार (डायरिया) तथा आंतों के अन्य विषाणु प्रतिस्पर्धा करते हैं जिस वजह से वैक्सीन की क्षमता में कमी आ जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि पोलियो वैक्सीन के तीनों प्रकार के विषाणु आपस में प्रतिस्पर्द्धा करते हों और इस कारण इनकी कार्य क्षमता में कमी आ जाती हो।

हमारे देश में पोलियो उन्मूलन की विशेषज्ञ सलाहकार समिति ने केवल 'मोनोवेलैंट' ओरल पोलियो वैक्सीन की खुराक पिलाने की सिफारिश की थी जो टाइप-1 प्ररूप को निशाना बनाता है। सच तो यह है कि टाइप-1 को निशाना बनाने वाला यह मोनोवेलैंट ओरल पोलियो वैक्सीन भारत में आमतौर पर इस्तेमाल किए गए 'tOPV' की तुलना में तीन गुना अधिक कारगर है। फिर भी यह एक बहुत बड़ी चुनौती है ताकि पोलियो का विषाणु फिर से पलटी न मारे। लेकिन, यहां हम यह ध्यान दिलाना चाहेंगे कि पोलियो के विशेष क्षेत्रों में 'tOVP' टीके का इस्तेमाल अधिकतर अभियानों और बच्चों में प्रतिरक्षण के सामान्य कार्यक्रमों में जारी रहेगा, वहीं 'mOPV1' वर्तमान प्रतिरक्षण अभियानों में अतिरिक्त टीके के रूप में काम आता रहेगा। टाइप-3 वाले पोलियो से, अगर कहीं हुआ, तो बाद में निपटा जा सकता है।

मुंह से दिए जाने वाले वैक्सीन में कमजोर किया हुआ जीवित विषाणु इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए इस वैक्सीन का विषाणु कभी-कभी उग्र रूप धारण करके संक्रमण का खतरा भी पैदा कर सकता है, जबकि निष्क्रिय वैक्सीन (आई वी पी) की सुई लगाई जाती है तो उसके उग्र बन जाने का कोई खतरा नहीं रहता क्योंकि वह तो होता ही है मारा हुआ। भारत में इस वैक्सीन के परीक्षणों में यह सिद्ध हुआ है कि सुई से दिया जाने वाला यह वैक्सीन काफी असरदार है। मुख में दिए जाने वाले वैक्सीन को 2 से 8 डिग्री सेल्सियस तक ठंडा रखा जाता है, जबकि सुई वाले टीके के लिए अधिक प्रशीतन की आवश्यकता नहीं पड़ती। सामान्य तापमान पर भी वह स्थाई बना रहता है। लेकिन, यह सुई वाला वैक्सीन, मुख में दिए जाने वाले वैक्सीन से करीब 20 गुना महंगा है। फिर भी इसके फायदे देखते हुए विशेषज्ञों ने सुझाव दिया है कि इसके लिए दूसरी रणनीति अपनाई जानी चाहिए। इसके तहत पोलियो उन्मूलन अभियान में मुख में दिए जाने वाले वैक्सीन की नियमित खुराक के साथ ही पोलियो के वैक्सीन की सुई भी लगाई जा सकती है। असल में पोलियो के विरुद्ध प्रतिरक्षण की रणनीति में दोनों तरह के वैक्सीन के उपयोग की सलाह दी गई है।

भारत सहित पूरी दुनिया से चेचक का उन्मूलन तो सन् 70 के दशक में ही कर दिया गया था। तब से चेचक का एक भी मामला सामने नहीं आया है। इसीलिए पोलियो के खिलाफ जंग में भी विजय की आशा बंधती है। घनी और ज्यादा आबादी वाले इलाकों में साफ-सफाई भी इतनी नहीं होती, इसलिए इन इलाकों में अक्सर विषाणु संक्रमण और अतिसार (डायरिया) जड़ें जमा लेते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई भागों में गरीबी, निरक्षरता, उच्च जन्म दर, रहन-सहन के निचले स्तर के कारण पोलियो के उन्मूलन में कठिनाई पैदा हो रही है। पोलियो उन्मूलन अभियानों में इन मुद्दों को भी शामिल करना होगा। इसके बाद पोलियो एक पीछे हटता हुआ लक्ष्य नहीं रह पाएगा।

❒ **विनय बी. काम्बले**